1966B Jain Cosmology compared with others

Spherical or flat earth (1936 notes). Possibly both are unpublished.

जैन मान्यतानुसार लोक-वर्णन

अनन्त आकाशके ठीक बीचों-बीच यह हमारा लोक अवस्थित है। इसे पुरुषाकार माना गया है। जैसे कोई पुरुष, अपने दोनों पैरोंको फैलाकर और दोनों हाथोंको अपनी कमर पर रख उत्तर मुख खड़ा हो, तो उसका जैसा आकार होता है, ठीक इसी प्रकार का लोकका आकार है। कटि भागसे नीचेके भाग को अधोलोक, ऊपरके भाग को ऊर्ध्व लोक और कटि-स्थानीय भाग को मध्य लोक कहते हैं। इस तीन विभागवाले लोकको लोकाकाश कहते हैं, क्योंकि इसके भीतर ही जीव, पुद्गलादि सभी चेतन और अचेतन द्रव्य पाये जाते हैं। इसके सर्व ओर पाये जाने वाले अनन्त आकाशको अलोकाकाश कहते हैं; क्योंकि उसमें केवल आकाशके अतिरिक्त अन्य कोई द्रव्य नहीं पाया जाता है।

लोकाकाशकी ऊंचाई १४ राजु है। यह अधोलोकमें सबसे नीचे सात राजु विस्तृत है, पुनः क्रमसे घटता हुआ कटिस्थानीय मध्यभागमें एक राजु विस्तृत है। इससे ऊपर क्रमसे बढ़ता हुआ दोनों हाथों की कोहनी-स्थान पर पांच राजु विस्तृत है और फिर क्रमसे घटता हुआ शिरःस्थानीय लोकके अग्र भाग पर एक राजु विस्तृत है। यह समस्त लोक सर्व ओर घनोदधि, घनवात और तनुवात इन तीन जातिके वात-वलयोंसे वेष्टित है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह सर्व लोक अनन्त आकाशके मध्यमें तीन प्रकार की पवनोंके आधार पर अवस्थित है। प्रथम जाति का पवन अधिक सघन है अतः उसे घनोदधिवात कहते हैं। दूसरा पवन उससे पतला होते हुए भी तीसरे पवनकी अपेक्षा सघन है, अतः उसे घनवात कहा गया है। तीसरा पवन उक्त दोनों पवनोंकी अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म या पतला है, इसलिए इसे तनुवात कहते हैं।

(एक राजु या रज्जु में असंख्यात योजन होते हैं X)

[illegible]

X इनका प्रमाण दोनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंसे देना।

[illegible] " " — नहीं मिला।

[illegible]

आधे प्रदेश के ... [illegible] (margin note)

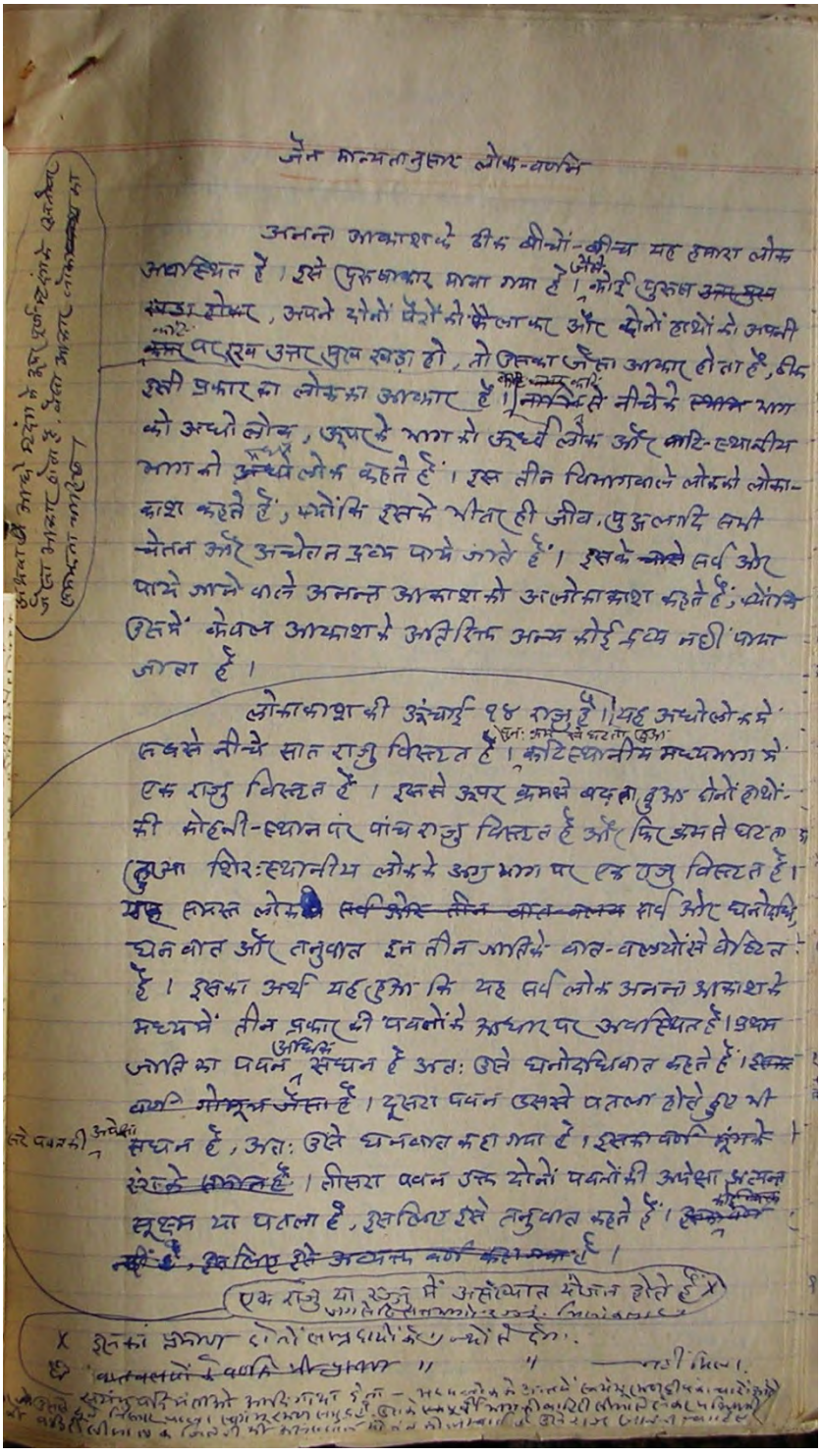

अधोलोक

इस कटिस्थानीय भालरी के समान आकारवाले मध्यलोक के नीचे सात पृथिवियां हैं— १ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पंकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा और ७ महातमःप्रभा। इनमें से पहली रत्नप्रभा पृथिवीके तीन भाग हैं— १ खरभाग, २ पंकभाग और अब्बहुल भाग। इनमें खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है, पंकभाग चौरासी हजार योजन और अब्बहुल भाग अस्सी हजार योजन मोटा है। इस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। इस तीन विभागवाली रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे असंख्यात हजार योजन के अन्तराल के बाद दूसरी शर्करा पृथिवी है। यह एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी है। इसके नीचे पुनः असंख्यात हजार योजन नीचे जाकर तीसरी शर्करा पृथिवी है। इसकी मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन है। इस तीसरी पृथिवी का तल भाग मध्यलोक से आगम भाषा में दो राजुप्रमाण है। इस पृथिवी में असंख्यात सहस्र योजन होते हैं। इससे असंख्यात योजन नीचे जाकर चौथी पृथिवी है जिसकी मोटाई एक लाख चौबीस हजार योजन है और उसका तलभाग मध्यलोक से तीन राजु नीचा है। इससे असंख्यात योजन जाने पर पांचवी पृथिवी है, उसकी मोटाई एक लाख बीस हजार योजन मोटी है, इसका तल भाग मध्यलोक से चार राजु नीचे है। इससे नीचे असंख्यात हजार योजन जाने पर छठी पृथिवी है। इसकी मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन मोटी है। इसका तल भाग मध्यलोक से पांच राजु नीचा है। इससे असंख्यात सहस्र योजन जाने पर सातवीं पृथिवी है। इसकी मोटाई एक लाख आठ हजार योजन है और इसका तल भाग मध्यलोक से ६ राजु नीचा है। पृथिवियों के रत्नप्रभादि नाम सार्थक हैं, अर्थात् जिस भूमिका जो नाम है उसकी प्रभा या कान्ति तदनुसार ही है। इन पृथिवियोंके क्रमशः घम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी, और माघवी ये गौण या रौढिक नाम हैं। उपर्युक्त सातों ही पृथिवियां घनोदधि, घनवात और तनुवात और आकाश के आधार पर अवस्थित हैं। अर्थात् प्रत्येक पृथ्वी घनोदधि वात के आधार से, घनोदधि वात घनवात के आधार पर और घनवात तनुवात के आधार पर अवस्थित है। तनुवात का आधार आकाश है और वह स्वप्रतिष्ठित है।

प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भागों में से पहले और दूसरे भाग में क्रमशः व्यन्तर और भवनवासी देव रहते हैं। तीसरे भाग में नारकी जीवों के रहने के स्थान हैं।

(पीछे देखें)

(मेघा – त्रिलोकसार के अनुसार मेघा)

रत्नप्रभा पृथ्वीके एकलाख अस्सीहजार योजन प्रमाण क्षेत्रमें से ऊपर-नीचेके १-१ हजार योजन भागको छोड़कर मध्यवर्ती क्षेत्रमें भवनवासियोंके सात करोड़ बहत्तर लाख भवन हैं। (देखो प्रस्तुत ग्रन्थ का पृ० ६५।)

~~किन्तु यहां यह ज्ञातव्य है कि~~ किन्तु त्रिलोकप्रज्ञप्ति व तत्त्वार्थवार्तिक[२] आदि ग्रन्थोंमें भवनवासियोंके ~~[illegible]~~ एवं व्यन्तरदेवोंके ~~निवास~~ स्थानोंके ~~[illegible]~~ विभाग भिन्न रूपसे पाये जाते हैं।

१ देखो तिलोयपण्णत्ती. अधि० ३, गा. ७ | तत्त्वार्थवार्तिक सूत्र ३.१।

दूसरी पृथ्वी के ऊपरी-नीचले एक एक हजार योजन भूमिभाग को छोड़कर मध्यवर्ती भाग में नारकियों के रहने के पच्चीस लाख नारकावास हैं। तीसरी आदि पृथ्वियों की मोटाई के ऊपरी-नीचले एक एक हजार योजन के भूमिभाग को छोड़कर मध्यवर्ती भागों में क्रमशः पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख, पांच कम एक लाख और पांच नरक बिले हैं। ये नरकावास भूमि के भीतर हैं और पटल या पाथड़ों में विभक्त हैं। इन नरकावासों में क्रूर कर्म करने वाले मनुष्य या तिर्यंच पशु-पक्षी उत्पन्न होते हैं, जहां पर वे पहली पृथ्वी में जघन्य दश हजार वर्ष से लेकर सातवीं पृथ्वी में तेतीस सागर काल तक निरन्तर नाना प्रकार के दुःख उठाते रहते हैं। इन नारकियों की अकाल मृत्यु नहीं होती, किन्तु अपनी आयु के पूर्ण होने पर ही उनका मरण होता है। नारकियों का उपपाद जन्म होता है, [illegible] अन्तर्मुहूर्त में ही [illegible] अधोमुख नीचे नरक में गिरते हैं।

उपपाद

सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजु प्रमाण मोटे और लोकरज्जु प्रमाण विस्तृत क्षेत्र में केवल एकेन्द्रिय जीवों का ही निवास है।

मध्यलोक

मध्यलोक का आकार झालर या चूड़ी के समान है। इसके सबसे मध्यभाग में एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप है, इसे सब ओर से घेरे हुए दो लाख योजन विस्तृत लवण समुद्र है। इसे सब ओर से घेरे हुए चार लाख योजन विस्तृत धातकीखंड द्वीप है। इसे सब ओर से घेरे हुए आठ लाख योजन विस्तृत कालोद समुद्र है। इसे सब ओर से घेरे हुए सोलह लाख योजन विस्तृत पुष्करद्वीप है। इस पुष्कर द्वीप के ठीक मध्यभाग में एक मानुषोत्तर पर्वत है। इससे परवर्ती पुष्करार्ध एवं आगे के असंख्यात द्वीप-समुद्रों में मनुष्यों का गमन नहीं होता है, ऐसी दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है, किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यतानुसार ऋद्धि-सम्पन्न मनुष्य जा-आ सकते हैं।

पुष्कर द्वीप को घेरकर उससे दूने विस्तार वाला समुद्र है। उसे घेरकर दूने विस्तार वाला द्वीप है। इस प्रकार एक-दूसरे को घेरे हुए इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। सबसे अन्त में असंख्यात योजन विस्तृत स्वयम्भूरमण समुद्र है।

मध्यलोक में जम्बूद्वीप के ठीक मध्यभाग में जो एक लाख योजन ऊंचा मेरुपर्वत है, उसकी नींव एक हजार योजन प्रमाण (रत्नप्रभा पृथ्वी के भीतर) है। उस एक हजार योजन में से सौ-सौ योजन ऊपरी-नीचे भाग को छोड़कर शेष 800 योजन वाले भाग में तिरछे [illegible] दिशाओं में व्यन्तर देवों के आवास हैं, किन्तु दिगम्बरों ने रत्नप्रभा के [illegible]

जम्बूद्वीप

मध्य लोक के ठीक बीच में जम्बूद्वीप है। इसके ठीक मध्यभाग में मेरु पर्वत है, जो एक लाख योजन ऊँचा है। इसके ईशान कोण की भोगभूमि पर एक अनादि निधन पार्थिव जम्बू वृक्ष है, उसके निमित्त से ही इसका नाम जम्बूद्वीप पड़ा है। इस द्वीप के मध्य भाग में छह वर्षधर पर्वत हैं - १ हिमवान, २ महाहिमवान, ३ निषध, ४ नील, ५ रुक्मी और ६ शिखरी। इन से विभक्त होने से जम्बूद्वीप के सात विभाग हो जाते हैं, जिन्हें वर्ष या क्षेत्र कहते हैं। उनके नाम दक्षिण की ओर से इस प्रकार हैं - १ भारतवर्ष, २ हैमवतवर्ष, ३ हरिवर्ष, ४ विदेहवर्ष, ५ रम्यकवर्ष, ६ हैरण्यवतवर्ष और ७ ऐरवत या ऐरावत वर्ष। इनमें से विदेह क्षेत्र के मध्य भाग में मेरुपर्वत है। इसके उत्तरी भाग में रम्यक आदि तीन क्षेत्र हैं और दक्षिणी भाग में भारतवर्ष आदि तीन क्षेत्र हैं। इनमें से भरत, ऐरवत और विदेह क्षेत्र (देवकुरु-उत्तरकुरु को छोड़कर) कर्मभूमि कहलाते हैं, क्योंकि यहां के मनुष्य असि-मषी आदि कर्मों के द्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं और अपने पुरुषार्थ कर्म के द्वारा स्वर्ग-मुक्ति को प्राप्त होते हैं, या पाप कर्मों का उपार्जन कर नरक-तिर्यंच गति को जाते हैं। उक्त कर्मभूमि के सिवाय शेष क्षेत्रों में अकर्मभूमि या भोगभूमि है, क्योंकि वहां के जीवों को असि-मषी आदि कर्मों के द्वारा जीविकोपार्जन नहीं करना पड़ती है, किन्तु प्रकृति-प्रदत्त कल्पवृक्षों के द्वारा ही उनका जीवन-निर्वाह होता है और वे सदा स्वस्थ, नीरोग रहते हुए पूर्ण आयु-पर्यन्त दिव्य भोगों को भोगते रहते हैं।

वर्षधर पर्वत

ऊपर जिन छह वर्षधरों के नाम कहे गये हैं, उनके ऊपर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के हृद या सरोवर हैं। इनमें से हिमवान पर्वतस्थ पद्म सरोवर के पूर्वभाग से गंगा नदी निकलती है, जो भारत क्षेत्र में दक्षिण तक बहकर पुनः पूर्व की ओर बहती हुई पूर्व समुद्र में जाकर मिलती है। इसी प्रकार उक्त सरोवर के पश्चिमी भाग से सिन्धु नदी निकल कर आगे के दक्षिण भाग में कुछ दूर बहकर पश्चिम समुद्र में जाकर मिलती है। इसी सरोवर के उत्तरी भाग से रोहितास्या नदी निकली है, जो कि हैमवत क्षेत्र में बहती है।

अन्तिम शिखरी कुलाचल के ऊपर स्थित पुण्डरीक सरोवर के ~~[illegible]~~ पूर्वी और पश्चिमी भाग से क्रमशः रक्ता और रक्तोदा नदियां निकल कर ऐरावत क्षेत्र में बहती हुई क्रमशः पूर्व और पश्चिम समुद्र में जाकर मिलती हैं। इसी पुण्डरीक सरोवर के दक्षिणी भाग से सुवर्णकूला नदी निकली है जो हैरण्यवत क्षेत्र में बहती है। शेष मध्यवर्ती कुलाचलस्थ सरोवरों से दो-दो महानदियां निकल करके मध्यवर्ती क्षेत्रों में बहती हुई पूर्व एवं पश्चिम के समुद्र में जाकर मिलती हैं, इन महानदियों में लाखों अन्य सहायक नदियां मिलती हैं।

विदेह क्षेत्र में सुमेरु के ईशानादि चारों कोणों में क्रमशः गन्धमादन, माल्यवान, ~~[illegible]~~ सौमनस और विद्युत्प्रभ — नाम वाले चार पर्वत हैं। इनसे विभक्त होने के कारण मेरु के दक्षिणी भाग को देवकुरु और उत्तरी भाग को उत्तरकुरु कहते हैं। मेरु के पूर्वी भाग को पूर्व विदेह और पश्चिमी भाग को अपर या पश्चिम विदेह कहते हैं। इन पूर्व या पश्चिम विदेह में कर्मभूमि है और देवकुरु-उत्तरकुरु में भोगभूमि है।

(ति० १।१० का वर्णन है)

क्षेत्र माप निरूपण

तिलोयपण्णत्ति में माप का वर्णन इस प्रकार किया गया है —

अनन्त परमाणु समुदाय	=	१ उत्सन्नासन्न (उत्संज्ञासंज्ञिका)
८ उ०	=	१ सन्नासन्न (संज्ञासंज्ञिका)
८ सन्ना०	=	१ त्रुटिरेणु
८ त्रुटिरेणु	=	१ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु	=	१ रथरेणु
८ रथरेणु	=	१ देवकुरु के मनुष्यों का बालाग्र
८ बालाग्र	=	१ हरिवर्ष ” ”
८ हरि०	=	१ हैमवत ” ”
८ हैम०	=	१ विदेहक्षेत्र स्थित का बालाग्र
८ वि०	=	१ भरत क्षेत्रज मनुष्य का ”
८ भ० मनु० बालाग्र	=	१ लिक्षा (लीख)
८ लिक्षा	=	१ जूं (जूं)
८ जूं	=	१ यवमध्य
८ यवमध्य	=	१ उत्सेधांगुल
६ उत्सेधांगुल	=	१ पाद

(क्रमशः)

ज्योतिर्लोक

जम्बूद्वीपके समतलभागसे ७९० योजन की ऊँचाई से लेकर ९०० योजन की ऊँचाई तक ज्योतिर्लोक है, जहाँपर सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पाँच प्रकारके ज्योतिषी देवों के विमान हैं। ये विमान ज्योतिर्मान या प्रकाश-स्वभावी हैं, इसलिए इन्हें ज्योतिष्क कहते हैं और इनमें रहनेवाले ज्योतिष्क देवों के निवास के कारण यह ज्योतिर्लोक कहलाता है। तिर्यक् रूपमें यह ज्योतिर्लोक स्वयम्भूरमण समुद्र तक फैला हुआ है। इसमें ७९० योजन की ऊँचाई पर सर्वप्रथम तारकाओं के विमान हैं। उनसे १० योजन की ऊँचाई पर सूर्यों के विमान हैं। सूर्य से ८० योजन ऊपर चन्द्र का विमान है। उससे ४ योजन ऊपर नक्षत्र हैं। उनसे ४ योजन ऊपर बुध का विमान है। उससे ३ योजन ऊपर शुक्र का विमान है। उससे ३ योजन ऊपर बृहस्पति का विमान है। उससे ३ योजन ऊपर मंगल का विमान है और उससे ३ योजन ऊपर शनैश्चर का विमान है। इस प्रकार ये सर्व ज्योतिष्क विमान मध्यलोक के समभूमिभाग से ऊपर ७९० योजन से लेकर ९०० योजन की ऊँचाई तक (१०+८०+४+४+३+३+३+३=११०) एक सौ दश योजन के भीतर ज्योतिष्क-समुदाय पाया जाता है।

मध्यलोकवर्ती तीसरे पुष्करद्वीपके मध्यमें जो मानुषोत्तर पर्वत है, वहाँ तक का क्षेत्र मनुष्यलोक कहलाता है। इस मनुष्यलोक के भीतर के सर्व ज्योतिष्क-विमान निरन्तर मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए घूमते रहते हैं और इनके उदय और अस्त से मनुष्यलोक में दिन-रात्रि आदि काल का व्यवहार होता है। मनुष्यलोक के बाहिर आगे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र तक के असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्र में जो असंख्य ज्योतिष्क विमान हैं, वे सदा अवस्थित रहते हैं, घूमते नहीं हैं।

जम्बूद्वीपस्थ मेरुपर्वत के चारों ओर ११२१ योजन तक ज्योतिष्क-मंडल नहीं है, लोकान्त से भी इतने ही योजन छोड़कर भीतर की ओर ही ज्योतिष्क-मण्डल है। यह मध्यवर्ती अन्तराल के साथ तिर्यक् फैला हुआ है। (मध्यवर्ती भाग)

जैन मान्यता के अनुसार जम्बूद्वीप में २ सूर्य और २ चन्द्र हैं। एक सूर्य जम्बूद्वीप की पूरी प्रदक्षिणा दो दिन-रातों में करता है। इसका परिभ्रमण-क्षेत्र जम्बूद्वीप के भीतर १८० योजन और लवणसमुद्र के भीतर ३३० ४८/६१ योजन माना गया है। सूर्य के घूमने की मंडल १८४ हैं। एक मंडल से दूसरे मंडल में दो योजन का अन्तर है। इस प्रकार प्रथम मंडल से अन्तिम १८४ मंडल तक परिभ्रमण करने में सूर्य को ३६६ दिन लगते हैं। जैन मान्यता के अनुसार इतने ही दिन एक वर्ष में होते हैं। चन्द्र के परिभ्रमण की मंडल कुल १५ हैं। चन्द्र को मेरु की पूरी प्रदक्षिणा करने में दो दिन-रात से कुछ अधिक समय लगता है, क्योंकि उसकी गति सूर्य से मन्द है। इसी कारण चन्द्र के उदय में न्यूनाधिकता दृष्टिगोचर होती है। चान्द्रमास के अनुसार वर्ष में ३५५ या ३५६ ही दिन होते हैं।

१२ अंगुल = १ वितस्ति
२ वितस्ति = १ रत्नि
२ रत्नि = १ कुक्षि (दि० पं० में किष्कु)
२ कुक्षि = १ दण्ड (धनुष)
२ हजार धनुष = १ गव्यूति
४ गव्यूति = १ योजन
असंख्य योजन = १ राजु
१४ राजु = १ लोक का उत्सेध

कालगणना तीन प्रकार से की गई है – संख्यात, असंख्यात और अनन्त। इनमें संख्यात गणना का वर्णन करते हैं। काल-मान का वर्णन

समय – काल का सबसे छोटा अविभागी अंश
असंख्यात समय = १ आवली
" आवली = १ उच्छ्वास ~~निश्वास~~ तथा निःश्वास होता
१ श्वासोच्छ्वास = १ प्राण
७ प्राण = १ स्तोक
७ स्तोक = १ लव
७७ लव = १ मुहूर्त
३० मुहूर्त = १ अहोरात्र
१५ अहोरात्र = १ पक्ष
२ पक्ष = १ मास
२ मास = १ ऋतु
३ ऋतु = १ अयन
२ अयन = १ संवत्सर
८४ लाख वर्ष = १ पूर्वांग
८४ लाख पूर्वांग = १ पूर्व
८४ लाख पूर्व = १ पर्वांग
८४ लाख पर्वांग = १ पर्व
~~८४ पर्व~~

इसी प्रकार नयुतांग – नयुत, कुमुदांग – कुमुद, पद्मांग – पद्म, नलिनांग – नलिन, कमलांग – कमल, त्रुटितांग – त्रुटित, अटटांग – अटट, अममांग – अमम, हूहूअंग – हूहू, लतांग – लता, महालतांग – महालता, शीर्षप्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचलात्म ~~आदि~~ को उत्तरोत्तर ८४-८४ लाख गुणा जानना चाहिए। ये सभी संख्याएं संख्यात के भीतर हैं। पल्योपम, सागरोपम असंख्यात रूप संख्याएं हैं और इन सबके ऊपर की जो राशि होती है वह अनन्त जानना चाहिए।

लवण समुद्रमें ४ सूर्य और ४ चन्द्र हैं। घातकीखण्डद्वीपमें १२ सूर्य और १२ चन्द्र हैं। कालोद समुद्रमें ४२ सूर्य और ४२ चन्द्र हैं। पुष्करार्धद्वीपमें ७२ सूर्य और ७२ चन्द्र हैं। पुष्करार्धके परवर्ती अर्धभागमें भी सूर्य और चन्द्र ७२-७२ ही हैं। इससे आगे पुष्करवरद्वीपसे लगाकर स्वयम्भूरमण समुद्र तक सूर्य और चन्द्रकी संख्या उत्तरोत्तर दूनी-दूनी है। एक चन्द्रके परिवारमें एक सूर्य, अट्ठाईस नक्षत्र, अट्ठासीग्रह और छयासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे होते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र होनेसे नक्षत्रादिकी संख्या भी दूनी जानना चाहिए। इस प्रकार सारे ज्योतिर्लोकमें असंख्य सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और ग्रह हैं, तथा इनसे ~~भी असंख्याता~~ ६६९७५ कोड़ाकोड़ी गुणित तारे हैं।

जैन मान्यताके अनुसार यद्यपि मनुष्यलोकवर्ती ज्योतिष्क विमानोंका गमन स्वभावतः है, तथापि आभियोग्य जातिके देव सूर्य आदिके विमानोंको गतिशील बनाये रखनेमें निमित्त हैं। ये देव सिंह, गज, बैल और घोड़ेका आकार धारणकर क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें संलग्न रहकर सूर्यादिको गतिशील बनाये रखते हैं।

~~तारा ओंकी यह संख्या दि० तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार, तथा श्वे० सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र १९३ और जीवाभिगमसूत्र १९४ के अनुसार है। किन्तु उक्त तीनों श्वे० आगमोंसे क्रमशः सूत्र १००, १२६ और १९४ के तथा आवश्यकसूत्र और चन्द्रप्रज्ञप्तिके अनुसार यह तारा-संख्या एकलाख, तेतीस हजार नौसौ पचास कोड़ाकोड़ी है। (विशेषके लिए देखें प्राकृत-परिशिष्ट पृ० २५२)~~

इस प्रकरणमें जहां जहां संख्याका उल्लेख आया है, उसके नीचे गणितानुयोग की पृष्ठसंख्या देना है

ऊर्ध्व ~~स्वर्ग~~लोक

मेरुपर्वतकी ऊंचाई एक लाख योजन बतलाई गई है। उसकी चूलिका चालीस योजन ऊंची है। इसके ऊपर एक बालमात्रके अन्तरसे सौधर्म स्वर्ग का ऋजु नामक विमान अवस्थित है। श्वेताम्बरीय मान्यतानुसार स्वर्गोंकी संख्या बारह है और दिगम्बरीय मान्यतानुसार सोलह है। इन स्वर्गोंमें कल्पवासी देव और देवियां रहती हैं और अन्तिम स्वर्ग में बाईस सागर कालतक भौतिक सुखोंका उपभोग करती रहती हैं। इन स्वर्गोंके ऊपर जो नौ ग्रैवेयक, दिगम्बरीय मान्यतानुसार नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर विमान हैं उनमें रहने वाले कल्पातीत देव कहलाते हैं, अर्थात् उनमें इन्द्र-सामानिक आदिकी कल्पना नहीं है, वे उससे परे हैं और सभी समान वैभव वाले हैं। सभी अपने आपको इन्द्र रूपसे अनुभव करते हैं; इसलिए उन्हें अहमिन्द्र (अहं-इन्द्र) कहा जाता है।

स्वर्गोंमें जो देव रहते हैं उनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक नामकी दश जातियां हैं। जो सामानिक आदि अन्य देवोंके स्वामी होते हैं, वे इन्द्र कहलाते हैं। इनकी आज्ञा सब देव शिरोधार्य करते हैं और इनका विभव-ऐश्वर्य सब देवोंसे बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है। जो आज्ञा और ऐश्वर्यको छोड़कर शेष सब बातोंमें इन्द्रके समान होते हैं, उन्हें सामानिक कहते हैं। मंत्री और पुरोहितका काम करनेवाले देव त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं। इनकी संख्या तेतीस ही होती है, इसलिए ये त्रायस्त्रिंश कहे जाते हैं। इन्द्रकी सभा या परिषद्के सदस्योंको पारिषद कहते हैं। इन्द्रके अंग-रक्षक देव आत्म-रक्ष कहलाते हैं। सब देवोंकी रक्षा करनेवाले देव लोकपाल कहलाते हैं। सेनामें काम करनेवाले देव अनीक कहलाते हैं। साधारण प्रजा-स्थानीय देवोंको प्रकीर्णक कहते हैं। जो देवलोकमें सबसे हीन पुण्यवाले देव हैं, उन्हें किल्विषिक कहते हैं।

पहले जिन भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका वर्णन किया गया है, उनमेंसे भवनवासियोंमें भी उक्त दश भेद हैं किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें त्रायस्त्रिंश और लोकपालको छोड़कर शेष आठ भेद होते हैं।

(P.T.O.)

पांचवें ब्रह्मस्वर्ग के अन्त में आठों दिशाओं में आठ जाति के लौकान्तिक देव रहते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट। ये आठों ही जाति के देव ब्रह्मर्षि या सुर-ऋषि कहलाते हैं; क्योंकि ये काम-वासना से रहित और स्वर्गों के देवों से सर्वाधिक ज्ञानी होते हैं। ये तीर्थंकरों के अभिनिष्क्रमण कल्याणक के सिवाय किसी अन्य कल्याणकों में नहीं आते हैं।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी इन चारों ही प्रकार के देवों का औपपादिक जन्म होता है, अर्थात् अपनी उत्पत्ति शैया पर जन्म लेने के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

देखो ३ (१) यहां पर सिद्धलोक का वर्णन देना है

(२) ऊर्ध्वलोक का वर्णन ब्रह्मलोक के अन्त में लौकान्तिक देवों के निवास स्थान पर जो तमस्काय का वर्णन भी देना है (देखो गणितानुयोग पृ० ८२८-८३२)

सिद्धलोक

ऊर्ध्वलोक के सबसे अन्त में स्थित सर्वार्थसिद्धि विमान के सबसे ऊपरी स्तूपिका से बारह योजन ऊपर ईषत्प्राग्भार नामक पृथ्वी है। वह पैंतालीस लाख योजन लम्बी-चौड़ी गोल छत्राकार और चांदी के समान निर्मल परिरिक्त है। यह पृथ्वी ठीक बीच में आठ योजन मोटी है और फिर उससे सर्व ओर मोटाई घटती हानि होती हुई सबसे अन्तिम प्रदेशों में मक्खी के पंख से भी पतली हो गई है।

~~इस पृथ्वी के एक योजन ऊपर लोकान्त है~~

मध्यलोक में जिन अढ़ाई द्वीपों से ~~जीव~~ मनुष्य मुक्ति प्राप्त करते हैं, वह भी पैंतालीस लाख योजन विस्तृत है। यहां से मुक्त होने वाले जीव उस पृथ्वी के ऊपर लोकान्त तक जाकर सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से छूटकर अपने ~~आत्मस्वरूप में अवस्थित~~ आत्मिक अव्याबाध अनुपम सुख को भोगते हुए अनन्त काल तक अवस्थित रहते हैं।

तमस्काय

जम्बूद्वीपसे तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लांघने पर अरुणवर द्वीपकी बाहरी वेदिकाके अन्तसे अरुणोदय समुद्रमें बयालीस हजार योजन ~~लांघनेपर~~ अवगाहन करके ऊपरी जलान्तसे एक प्रदेशकी श्रेणीसे तमस्काय प्रारम्भ होता है। पुन: १७२१ योजन ऊपर उठकर तत्पश्चात् विस्तारको प्राप्त होता हुआ सौधर्मादि चार कल्पोंको आवृत करके पांचवें ब्रह्मलोक कल्पमें रिष्ट विमान को प्राप्त होकर समाप्त होता है।

इस तमस्कायका आकार नीचे मल्लकमूल और ऊपर मुर्गेके पींजरेके समान है। इसका विस्तार जहां पर संख्यात हजार योजन है, वहां पर उसका परिक्षेप असंख्यात हजार योजन है, और जहां पर असंख्यात हजार योजन है, वहां पर भी उसका परिक्षेप उससे त्रिगुणसे साधिक असंख्यात हजार योजन प्रमाण है।

तमस्कायके १३ नाम बतलाये गये हैं। (देखो प्रस्तुत ग्रन्थके पृ० ४२९)
तथा उसकी आठ कृष्ण राजियां बतलायी गई हैं (देखो " " ४३१)

चन्द्र का क्षेत्रफल आदि

१

आज के वैज्ञानिकोंने चन्द्रके विषयमें जो तथ्य संकलित किये हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

व्यास — ३४५६ किलोमीटर (२२०० मील) — जो पृथ्वीका चतुर्थांश है
परिधि — १०८६४ किलोमीटर है।
पृथ्वीसे दूरी ३८४४०१ किलोमीटर है
चन्द्रतलका तापमान — ११७ सेन्टीग्रेड — सूर्य जब ठीक शिरके ऊपर हो।
रातमें तापमान १२७ सेन्टीग्रेड है
सतहका गुरुत्वाकर्षण - पृथ्वीका छठा अंश है।
पृथ्वी पर जिस वस्तुका वजन २७ किलो है, वह चांद पर ४.५ किलो होगा।

चन्द्र विस्तार या बिम्ब पृथ्वीका १०० वां अंश है और उसका आयतन पृथ्वीके आयतन का ५० वां भाग है।

चन्द्रकक्षा की गति ३६६६८ किलोमीटर प्रति घण्टा है।
चन्द्रको पृथ्वी की परिक्रमा करनेमें २७ दिन ७ घंटे और ४३ मिनिट लगते हैं, क्योंकि वह लगभग इसी गतिसे अपनी धुरी पर घूमता है।
(हिन्दुस्तान, २३ जुलाई सन् १९६९)

वैदिक धर्मानुसार भूगोल वर्णन

जिस प्रकार जैन ग्रन्थों में और भूगोल का वर्णन किया गया है लगभग उसी प्रकार से हिन्दू पुराणों में भी भूगोल का वर्णन पाया जाता है। विष्णु पुराण के द्वितीयांश के द्वितीयाध्याय में बतलाया गया है कि इस पृथ्वी पर - १ जम्बू, २ प्लक्ष, ३ शाल्मल ४ कुश, ५ क्रौंच, ६, शाक, और ७ पुष्कर नामवाले सात द्वीप हैं। ये सभी चूड़ी के समान गोलाकार और क्रमशः १ लवणोद, २ इक्षुरस, ३ मदिरारस, ४ घृतरस, ५ दधिरस, ६ दुग्धरस, ७ मधुर रस वाले सात समुद्रों से वेष्टित हैं। इन सब के मध्य भाग में जम्बू द्वीप है। इसका विस्तार १ लाख योजन है। इसके मध्य भाग में ८४ हजार योजन ऊंचा स्वर्णमय मेरु पर्वत है। इसकी नींव पृथ्वी के भीतर १६ हजार योजन है। मेरु का विस्तार मूल में १६ हजार योजन है। और फिर क्रमशः बढ़कर शिखर पर ३२ हजार योजन हो गया है।[१]

इस जम्बू द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण भाग में हिमवान, हेमकूट, और निषध; तथा उत्तर भाग में नील, श्वेत और शृंगी, ये छः वर्ष पर्वत हैं। इनसे जम्बूद्वीप के सात भाग हो जाते हैं। मेरु के दक्षिणवर्ती निषध और उत्तरवर्ती नील पर्वत पूर्व-पश्चिम लवण समुद्र तक १ लाख योजन लम्बे, दो दो हजार योजन ऊंचे और इतने ही चौड़े हैं। इनसे परवर्ती हेमकूट, और श्वेत पर्वत लवण समुद्र तक पूर्व पश्चिम में ९० हजार योजन लम्बे, दो हजार योजन ऊंचे और इतने ही विस्तार वाले हैं। इनसे परवर्ती हिमवान और शृंगी पर्वत पूर्व पश्चिम अस्सी हजार योजन लम्बे दो हजार योजन ऊंचे और इतने ही विस्तार वाले हैं। इन पर्वतों के द्वारा जम्बू द्वीप के सात भाग हो जाते हैं। जिनके नाम दक्षिण की ओर से क्रमशः इस प्रकार हैं— १ भारतवर्ष २ किम्पुरुष, ३ हरिवर्ष ४ इलावृत, ५ रम्यक, ६ हिरण्मय ७ और उत्तरकुरु। इनमें इलावृत को छोड़कर शेष ६ का विस्तार उत्तर दक्षिण में ९ हजार योजन है। इलावृत वर्ष मेरु के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर, इन चारों ही दिशाओं में नौ नौ हजार योजन ~~विस्तृत~~

(१) विष्णु पुराण, द्वितीय अंश, द्वितीय अध्याय, श्लोक ५-८। मार्कण्डेय पुराण अ० ५४ श्लोक ५-७
(२) " " " " १०-१५। " श्लोक ८-१५।

विस्तृत है। इस प्रकार सर्व पर्वतों व वर्षों के विस्तार को मिलाने पर जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन प्रमाण हो जाता है।

मेरु पर्वत के दोनों ओर पूर्व पश्चिम में इलावृत वर्ष की सीमास्वरूप माल्यवान और गंधमादन पर्वत हैं। जो नील और निषध पर्वत तक विस्तृत हैं। इनके कारण दोनों ओर दो विभाग और हैं। जिनका नाम भद्राश्व, और केतुमाल है। इस प्रकार उपर्युक्त सात वर्षों में इन दो वर्षों को और मिला देने पर जम्बू द्वीप सम्बन्धी सब वर्षों (क्षेत्रों) की संख्या नौ हो जाती है।[३]

मेरु के चारों ओर पूर्वादिक दिशाओं में क्रमशः मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामवाले ४ पर्वत हैं। इनके ऊपर क्रमशः ग्यारह सौ योजन ऊंचे कदम्ब, जम्बू, पीपल, और वट, वृक्ष हैं। इनमें से जम्बू वृक्ष के नाम से यह जम्बू द्वीप कहलाता है।[४]

जम्बूद्वीपस्थ भारतवर्ष में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र ये सात कुल पर्वत हैं।[५] इनमें से हिमवान से शतद्रु, और चन्द्रभागादि, पारियात्र से वेद और स्मृति आदि, विन्ध्य से नर्मदा और सुरसा आदि, ऋक्ष से तापी पयोष्णी और निर्विन्ध्या आदि, सह्य से गोदावरी, भीमरथी, और कृष्णवेणी आदि, मलय से कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि, महेन्द्र से त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि तथा शुक्तिमान पर्वत से ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियां निकली हैं।[६] इन नदियों के किनारों पर मध्यदेश को आदि लेकर कुरु और पाञ्चाल, पूर्व देश को आदि लेकर कामरूप, दक्षिण को आदि लेकर पुण्ड्र, कलिंग, और मगध पश्चिम को आदि लेकर सौराष्ट्र शूर, आभीर और अर्बुद, तथा उत्तर देश को आदि लेकर मालव, कोशल, सौवीर, सैन्धव, हूण, शाल्व, और पारसीकों को आदि लेकर माद्र आराम और अम्बष्ठ देशवासी रहते हैं।[७]

(३) विष्णु पुराण, द्वितीय अंश, द्वितीय अध्याय, श्लोक २४। मार्क० अ० ५४, श्लो० १८, १९।
(४) " " " " १७-१९।
(५) " " तृतीय " " ३। मार्क० अ० ५४, श्लो० ९
(६) " " " " १०-१४।
(७) " " " " १५-१७।

उपर्युक्त सप्तक्षेत्रों में से केवल भारतवर्ष में ही कृत, त्रेता, द्वापर, और कलि नामक, चार युगों से काल-परिवर्तन होता है। किम्पुरुषादिक शेष क्षेत्रों में नहीं। उन आठ क्षेत्रों में रहनेवाली प्रजाको शोक, परिश्रम, उद्वेग, और क्षुधा आदि की बाधा नहीं होती है। वहां के लोग सदा स्वस्थ आतङ्क और दुःखों से निर्मुक्त रहते हैं वे दस-बारह हजार वर्षों तक जरा और मृत्यु से निर्भय रहकर आनन्द का उपभोग करते हैं। वहाँ पुण्य-पाप, और ऊंच-नीच, आदि का भी भेद नहीं है। उन क्षेत्रों में स्वर्ग मुक्ति की प्राप्ति के कारणभूत व्रत-तपश्चर्यादि का अभाव है। केवल जम्बूद्वीपस्थ लोगों में ही व्रत तपश्चरणादि द्वारा स्वर्गमोक्षादिक की प्राप्ति संभव है। इसलिए वह सभी क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।[८]

जम्बूद्वीप को सर्व ओर से घेरकर लवणसमुद्र अवस्थित है यह एक लाख योजन विस्तृत है।[९] लवणसमुद्र को घेरकर दो लाख योजन विस्तार वाला प्लक्षद्वीप है। इसके भीतर गोमेध, चंद्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, और सुमना नामक छः पर्वत हैं। जिनसे विभाजित होकर - शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनंद, शिव, क्षेमक और ध्रुव, नाम वाले सात वर्ष अवस्थित हैं। इन वर्षों और पर्वतों के ऊपर देव, और गन्धर्व रहते हैं। वे आधि व्याधि से रहित और अतिशय पुण्यवान हैं। वहाँ युगों का परिवर्तन नहीं है। केवल सदाकाल त्रेतायुग जैसा समय रहता है। वहाँ के निवासी लोगों की आयु पाँच हजार वर्ष-प्रमित है। उनमें चतुर्वर्ण व्यवस्था है, और वे अहिंसासत्यादि पांच धर्मों का पालन करते हैं। उस द्वीप में एक प्लक्षवृक्ष है इस कारण यह द्वीप प्लक्ष नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त है।[१०]

प्लक्षद्वीप को चारों ओर से घेरकर इक्षुरसोद समुद्र अवस्थित है, जो द्वीप के समान ही विस्तार वाला है। इसको चारों ओर से घेरकर चार लाख योजन विस्तार वाला शाल्मलद्वीप है, इसी क्रम से आगे सुरोद समुद्र, कुशद्वीप, घृतोद समुद्र, क्रौंचद्वीप, दधिरसोद समुद्र शाकद्वीप, और क्षीरसमुद्र अवस्थित हैं। ये सभी द्वीप अपने पूर्ववर्ती द्वीप के अपेक्षा दूने विस्तार वाले हैं और समुद्रों का विस्तार अपने २ द्वीप के समान है। इन द्वीपों की रचना प्लक्षद्वीप के समान है।[११]

(८) विष्णुपुराण द्वितीय अंश, तृतीय अध्याय, श्लोक-१९-२२।
(९) " " " " २८।
(१०) " " चतुर्थ " " १-१८।
(११) " " " " २०-५२।

क्षीर समुद्र को घेरकर सातवां पुष्कर द्वीप अवस्थित है। इसके ठीक मध्य भाग में गोलाकार वाला मानसोत्तर पर्वत विद्यमान है। उसके बाहरी भाग का नाम महावीरवर्ष और भीतरी भाग का नाम धातकी वर्ष है, उस द्वीप में रहने वाले लोग भी रोग, शोक, एवं राग-द्वेष से रहित होते हैं। उनकी आयु दस हजार वर्ष है, वहां ना ऊंच-नीच का भेद है और न वर्णाश्रम व्यवस्था ही है। उस पुष्कर द्वीप में नदियां और पर्वत भी नहीं हैं।[१२]

उस द्वीप को सर्व ओर से घेरकर मधुरोदक समुद्र अवस्थित है, उससे आगे प्राणियों का निवास नहीं है। मधुरोदक समुद्र से आगे उससे दूने विस्तार वाली स्वर्णमयी भूमि है। उसके आगे दस हजार योजन विस्तृत और उतना ही ऊंचा लोकालोक पर्वत है। इसके चारों ओर से घेरकर ~~तमस्तमार~~ तमस्तम स्थित है। यह तमस्तम भी चारों ओर से अण्डकटाह के द्वारा वेष्टित है, इस अण्डकटाह के साथ उपर्युक्त द्वीप-समुद्रों वाला यह समस्त भूमण्डल पचास करोड़ योजन विस्तार वाला है और उसकी ऊंचाई सत्तर हजार योजन है।[१३]

उस भूमण्डल पर दस दस हजार योजन के सात पाताल हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं — अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत, महातल, सुतल, और पाताल। ये क्रमशः शुक्ल कृष्ण अरुण पीत शर्करा शैल और कांचनस्वरूप हैं। यहां उत्तम भवनों से युक्त भूमियां हैं जहां दानव दैत्य, यक्ष, एवं नाग आदि निवास करते हैं।[१४]

पातालों के नीचे विष्णु भगवान का शेष नामक तामस शरीर स्थित है जो.... अनंत कहलाता है, यह शरीर सहस्र सिरों (फणों) से संयुक्त होकर समस्त भूमंडल को धारण कर पाताल के मूल में अवस्थित है। कल्पान्त के समय इसके मुंह से निकली हुई संकर्षणात्मक रुद्र विषाग्नि शिखा तीनों लोकों का भक्षण करती है।

---

(१२) विष्णुपुराण, द्वितीय अंश, चतुर्थ अध्याय, श्लोक ७३–८०।
(१३) " " " " ९३–९६।
(१४) " " पंचम " " २–४।
(१५) " " " " " १३–१५, १९–२०।

पृथिवी और जल के नीचे रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशासन, महाज्वाल, तप्तकुंभ, लवण, विलोहित, रुधिर, वैतरणि कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण, पूयवह, पाप, वन्हिज्वाल अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र, तम, आवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ, और अप्रचि इत्यादि बहुत से महाभयानक नरक है। इनमें पापी जीव मरकर जन्म लेते हैं[16] फिर वहाँ से निकलकर वे क्रमशः स्थावर, कृमि जलचर, धार्मिक पुरुष देव और मुमुक्षु होते हैं। जितने जीव स्वर्ग में हैं उतने ही जीव नरकों में भी हैं[17]।

भूमि से ऊपर एक लाख योजन की दूरी पर सौर मण्डल, इससे एक लाख योजन ऊपर चंद्रमंडल, उससे एक लाख योजन ऊपर समस्त नक्षत्र मण्डल इससे दो लाख योजन ऊपर बुध उससे दो लाख योजन ऊपर शुक्र, इससे दो लाख योजन ऊपर मंगल, उससे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति, उससे दो लाख योजन ऊपर शनि, उससे एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षि मंडल तथा उससे एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित है[18] ([redacted])

ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊपर जाकर महर्लोक है। यहाँ कल्पकाल तक जीवित रहनेवाले कल्पवासियों का निवास है। उससे दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है। यहाँ नंदनादि से सहित ब्रह्माजी के प्रसिद्ध पुत्र रहते हैं। उससे आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है। यहाँ वैराज देव निवास करते हैं। उससे बारह करोड़ योजन ऊपर सत्यलोक है। यहाँ फिर से न मरनेवाले अमर (अपुनर्मारक) रहते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहा जाता है। भूमि (भूलोक) और सूर्य के मध्य में सिद्धजनों व मुनिजनों से सेवित स्थान भुवर्लोक कहलाता है। सूर्य और ध्रुव के मध्य में चौदह लाख योजन प्रमाण क्षेत्र स्वर्लोक नाम से प्रसिद्ध है[19]।

भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक ये तीनों लोक कृतक, तथा जनलोक, तपलोक और सत्यलोक ये तीन लोक अकृतक हैं। इन दोनों (कृतक और अकृतक) के बीच में महर्लोक है। यह कल्पांत में जनशून्य हो जाता है परन्तु सर्वथा नष्ट नहीं होता[20]।

(१६) विष्णुपुराण, द्वितीय अंश, षष्ठ अध्याय, श्लोक १-६।
(१७) " " " " " ३४।
(१८) " " सप्तम " " २-९।
(१९) " " " " " १२-१८।
(२०) " " " " " १९-२०।

बौद्धमतानुसार भूगोल वर्णन

आ॰ वसुबन्धु ने अपने अभिधर्मकोश में लोक रचना इस प्रकार बतलाई है।—

लोक के अधोभाग में सोलह लाख योजन ऊंचा अपरिमित वायुमंडल है।[1] उसके ऊपर ग्यारह लाख बीस हजार योजन ऊंचा जलमंडल है,[2] इसमें तीन लाख बीस हजार योजन कांचनमय भूमण्डल है।[2] जलमंडल व कांचनमंडल का विस्तार बारह लाख तीन हजार चार सौ पचास योजन और परिधि छत्तीस लाख दस हजार तीन सौ पचास योजन प्रमाण है।[3]

कांचनमय भूमंडल के मध्य में मेरु पर्वत है। यह अस्सी हजार योजन नीचे जल में डूबा हुआ है तथा इतना ही ऊपर अवस्थित है।[4] इससे आगे अस्सी हजार योजन विस्तृत और दो लाख चालीस हजार योजन प्रमाण परिधि से संयुक्त प्रथम सीता (समुद्र) है। जो मेरु को घेरकर अवस्थित है। इससे आगे चालीस हजार योजन विस्तृत युगन्धर पर्वत वलयाकार से स्थित है। इसके आगे भी इसी प्रकार से एक एक सीता को अन्तरित करके उत्तरोत्तर आधे आधे विस्तार से संयुक्त क्रमशः (क्रमशः) ईषाधर, खदिरक, सुदर्शन, अश्वकर्ण, विनतक, और निमिंधर पर्वत हैं। सीताओं का विस्तार भी उत्तरोत्तर आधा आधा होता गया है।[5] उक्त पर्वतों में मेरु चतुरत्नमय और शेष सात पर्वत सुवर्णमय हैं। सबसे बाह्य में स्थित सीता (महासमुद्र) का विस्तार तीन लाख बाईस हजार योजन प्रमाण है। अन्त में लोहमय चक्रवाल पर्वत स्थित है।

निमिंधर और चक्रवाल पर्वतों के मध्य में जो समुद्र स्थित है, उसमें जम्बूद्वीप, पूर्वविदेह, अवरगोदानीय, और उत्तरकुरु ये चार द्वीप हैं। इनमें जम्बूद्वीप मेरु के दक्षिण भाग में है उसका आकार शकट के समान है, उसकी तीन भुजाओं में से दो भुजाएं दो दो हजार योजन और एक भुजा तीन हजार पचास योजन की है।[6]

१. अभिधर्मकोश, ३.४५।
२. " " ३, ४६।
३. " " ३, ४७-४८।
४. " ३, ५०।
५. " ३, ५१-५२।
६. " ३. ५३।

मेरु के पूर्वभाग में अर्द्ध चंद्राकार पूर्वविदेह नाम का द्वीप है। उसकी भुजाओं का प्रमाण जम्बू द्वीप की तीनों भुजाओं के समान है।[5] मेरु के पश्चिम भाग में मंडलाकार अवरगोदानीय द्वीप है। जिसका विस्तार ~~पच्च~~ अढ़ाई हजार योजन, और परिधि साढ़े सात हजार-योजन प्रमाण है।[6] मेरु के उत्तर भाग में समचतुष्कोण उत्तरकुरु द्वीप है इसकी एक एक भुजा दो दो हजार योजन की है। इनमें से पूर्वविदेह के समीप में देह-विदेह, उत्तरकुरु के समीप में कुरु-कौरव, जम्बूद्वीप के समीप में चामर-अवरचामर तथा गोदानीय द्वीप के समीप में शाठा और उत्तर मन्त्री ~~द्वी~~ अन्तर्द्वीप अवस्थित है। इनमें से चमरद्वीप में राक्षसों का और शेष द्वीपों में मनुष्यों का निवास है।[5]

जम्बूद्वीप में उत्तर की ओर नौ कीटाद्रि और उनके आगे हिमवान् पर्वत अवस्थित है। हिमवान् पर्वत से आगे उत्तर में पांच सौ योजन विस्तृत अनवतप्त नामका अगाध सरोवर है। इससे गंगा, सिन्धु, वक्षु, और सीता नामकी चार नदियां निकली है। इस सरोवर के ~~पास में~~ द्वीपमें जम्बूवृक्ष है, जिससे इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा है। अनवतप्त सरोवर के आगे गन्धमादक नाम का पर्वत है।[10]

जम्बूद्वीप के नीचे बीस हजार योजन विस्तृत अवीचि नामका नरक है। उसके ऊपर क्रमशः प्रतापन, तपन, महारौरव, रौरव, संघात कालसूत्र और संजीव नामके सात नरक और हैं।[11] इन नरकों के चारों-पार्श्वभागों में ~~कुकूल, कुणप~~ कुकूल, कुणप, क्षुरमार्गादिक (असि-पत्रवन, श्यामशबल-श्व-स्थान, ~~अयः~~ अयः शाल्मलीवन) और खारोदक वाली वैतरणी नदी ये चार उत्सद हैं। अर्बुद निरर्बुद, अटट, हहव, कुमुद, उत्पल, पद्म, और महापद्म नामवाले ये आठ शीतनरक और हैं[12] जो जम्बूद्वीप के अधोभाग में महानरकों के धरातल में अवस्थित हैं।

---

७. अभिधर्मकोश. ३.५४।
८. " ३.५५।
९. " ३.५६।
१०. " ३.५७।
११. " ३.५८।
१२. " ३.५९।

मेरू पर्वत के अर्द्ध भाग अर्थात् भूमि से चालीस हजार योजन ऊपर चन्द्र और सूर्य परिभ्रमण करते हैं। चंद्रमंडल का प्रमाण पचास योजन और सूर्यमंडल का प्रमाण इक्यावन योजन है। जिस समय जम्बूद्वीप में मध्याह्न होता है उस समय उत्तर कुरु में अर्द्ध रात्रि, पूर्व विदेह में अस्त-गमन और, अवरगोदानीय में सूर्योदय होता है।[13] भाद्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी से रात्रि की वृद्धि और फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की नवमी से उसकी हानि का प्रारंभ होता है। रात्रि की वृद्धि में दिन की हानि और रात्रि की हानि में दिन की वृद्धि होती है। सूर्य के दक्षिणायन में रात्रि की वृद्धि, और उत्तरायण में दिन की वृद्धि होती है।[14]

मेरू पर्वत के चार परिखंड (विभाग) हैं। प्रथम परिखंड मेरू और सीता जल से दस हजार योजन ऊपर स्थित है। इसके आगे क्रमशः दस दस हजार योजन ऊपर जाकर दूसरा, तीसरा, और चौथा परिखंड है। इनमें से पहला परिखंड सोलह हजार योजन, दूसरा परिखंड आठ हजार योजन, तीसरा परिखंड चार हजार योजन और चौथा परिखंड दो हजार योजन मेरू से बाहर निकला हुआ है। पहले परिखंड में पूर्व की ओर करोटपाणि यक्ष रहते हैं। दूसरे परिखंड में दक्षिण की ओर मालाधर रहते हैं। तीसरे परिखंड में पश्चिम की ओर सदामद रहते हैं। और चौथे परिखंड में चातुर्महाराजिक देव रहते हैं। इनका राजा वैश्रवण है। इसी प्रकार शेष सात पर्वतों पर भी उक्त देवों का निवास है।[15]

मेरू के शिखर पर त्रयस्त्रिंश (स्वर्ग) लोक है। उसका विस्तार अस्सी हजार योजन है। यहां पर त्रायस्त्रिंश देव रहते हैं। उसके चारों विदिशाओं में वज्रपाणि देवों का निवास है।[16] त्रयस्त्रिंश लोक के मध्य में इन्द्र का ढाई सौ योजन विस्तृत वैजयंत नामक प्रासाद है। नगर के बाहरी भाग में चारों ओर चैत्ररथ, पारुष्य, मिश्र, और नन्दन नामक चार वन हैं।[17] उनके चारों ओर बीस हजार योजन के अन्तर से देवों के क्रीडा-स्थल हैं।[18]

---

१३. अभिधर्मकोश. ३. ६०।
१४. " ३. ६१।
१५. " ३, ६३-६४।
१६. " ३. ६५।
१७. " ३. ६६-६७।
१८. " ३. ६८।

त्रयस्त्रिंश लोक के ऊपर विमानों में याम, तुषित, निर्माण, रति, और परनिर्मितवसवर्ती देव रहते हैं। कामधातुगत देवों में से चातुर्महाराजिक और त्रायस्त्रिंश देव मनुष्यवत् काम सेवन करते हैं। याम, तुषित, निर्माण, रति, और परनिर्मितवसवर्ती देव क्रमशः आलिंगन, पाणिसंयोग, हसित, और अवलोकन से ही तृप्ति को ही प्राप्त होते हैं।[१९]

काम धातु के ऊपर सत्तरह स्थानों से संयुक्त रूप धातु है। वे सत्तरह स्थान इस प्रकार हैं - प्रथम ध्यान में, ब्रह्मकायिक, ब्रह्मपुरोहित और महाब्रह्मलोक है। द्वितीय ध्यान में परित्ताभ, अप्रमाणाभ, और आभस्वर लोक है। तृतीय ध्यान में परित्त शुभ, अप्रमाणशुभ, और शुभकृत्स्न लोक है। चतुर्थ ध्यान में अनभ्रक, पुण्यप्रसव, बृहत्फल, पंचशुद्धावासिक, अवृह, अतप, सुदृश, सुदर्शन, और अकनिष्ठ, नाम वाले आठ लोक है। ये सभी देव लोक क्रमशः ऊपर ऊपर अवस्थित है। इनमें रहने वाले देव ऋद्धि बल से अथवा अन्य देव की सहायता से ही अपने से ऊपर के देवलोक को देख सकते हैं।[२०]

जम्बूद्वीपस्थ मनुष्यों का शरीर ३½ या ४ हाथ, पूर्वविदेह वासियों का ७-८ हाथ, गोदानीय द्वीपवासियों का १४-१६ हाथ, और उत्तरकुरुस्थ मनुष्यों का शरीर २८-३२ हाथ ऊंचा होता है। कामधातुवासी देवों में चातुर्महाराजिक देवों का शरीर ¼ कोश, त्रायस्त्रिंशों का ½ कोश, यामों का ¾ कोश, तुषितों का १ कोश, निर्माणरति देवों का १¼ कोश और परनिर्मितवसवर्ती देवों का शरीर १½ कोश ऊंचा है। रूपधातु में ब्रह्मकायिक देवों का शरीर ½ योजन ऊंचा है। आगे ब्रह्मपुरोहित, महाब्रह्म, परित्ताभ, अप्रमाणाभ, आभस्वर, परित्तशुभ, अप्रमाणशुभ, और शुभकृत्स्न देवों का शरीर क्रमशः १, १½, २, ४, ८, १६, ३२, और ६४ योजन प्रमाण ऊंचा है। अनभ्रक देवों का शरीर १२५ योजन ऊंचा है। आगे पुण्यप्रसव आदि सात देवों के शरीर उत्तरोत्तर दूनी दूनी ऊंचाई वाले हैं।[२१]

---

१९. अभिधर्मकोश. ३. ६९।
२०. " ३. ७१-७२।
२१. " ३. ७५-७७।

बौद्ध ग्रन्थों में योजन का प्रमाण इस प्रकार बतलाया गया है। [२२]

७ परमाणु = १ अणु
७ अणु = १ लोहरज
७ लोहरज = १ जलरज
७ जलरज = १ शशरज,
७ शशरज = १ मेषरज
७ मेषरज = १ गोरज
७ गोरज = १ छिद्ररज,
७ छिद्ररज = १ लिक्षा (लीख)
७ लिक्षा = १ यव
७ यव = १ अंगुलीपर्व
२४ अंगुलीपर्व = १ हस्त
४ हस्त = १ धनुष
५०० धनुष = १ कोश
८ कोश = १ योजन

काल का प्रमाण इस प्रकार बतलाया गया है। [२३]

१२० क्षण = १ तत्क्षण
६० तत्क्षण = १ लव
३० लव = १ मुहूर्त,
६० मुहूर्त = १ अहोरात्र
३० अहोरात्र = १ मास
१२ मास = १ संवत्सर

कल्पों के अन्तर्कल्प, संवर्तकल्प, विवर्तकल्प, और महाकल्प आदि अनेक भेद बतलाये गये हैं। [२४]

---

२२. अभिधर्मकोष. ३. ८५-८६।
२३. " ३. ८८-८९।
२४ " ३। ९० ।

वैज्ञानिकों के मतानुसार आधुनिक विश्व

पृथ्वी

जिस पृथिवी पर हम निवास करते हैं वह मिट्टी पत्थर का एक नारंगी के समान चपटा गोला है। जिसका व्यास लगभग आठ हजार मील और परिधि पच्चीस हजार मील भी है। वैज्ञानिकों के मतानुसार आज से करोड़ों वर्ष पूर्व किसी समय यह ज्वालामयी अग्नि का गोला था। यह अग्नि धीरे धीरे ठंडी होती गई और अब यद्यपि पृथ्वी का धरातल सर्वत्र शीतल हो चुका है। तो भी अभी इसके गर्भ में अग्नि तीव्रता से जल रही है, जिसके कारण पृथ्वी का धरातल भी कुछ उष्णता को लिये हुए हैं। ~~अति~~ नीचे की ओर खुदाई करने पर ~~[illegible]~~ ~~को~~ उत्तरोत्तर अधिक उष्णता पाई जाती है। कभी कभी यही भूगर्भ की ज्वाला कुपित होकर भूकम्प उत्पन्न कर देती है और कभी ज्वालामुखी के रूप में भी फूट निकलती है। जिससे पर्वत भूमि ~~और~~ नदी और समुद्र आदि के जल ~~और~~ स्थल भागों में परिवर्तन होता रहता है। इसी अग्नि के तापसे पृथ्वी का द्रव्य यथायोग्य दबाव और शीतलता पाकर नानाप्रकार की धातुएं, उपधातुओं एवं तरल पदार्थों में परिवर्तित हो गया है। हमें जो पत्थर, कोयला, लोहा, सोना, चाँदी, आदि तथा जल और वायुमंडल के रूप में दिखाई देता है। जल और वायु ही सूर्य के तापसे मेघ आदि का रूप धारण कर लेते हैं। यह वायुमंडल पृथ्वी के धरातल से उत्तरोत्तर विरल होते हुए लगभग ५०० पांचसौ मील तक फैला हुआ अनुमान किया जाता है। पृथ्वी का धरातल भी सर्वत्र समान नहीं है। पृथ्वी तल का उच्चतम भाग हिमालय का गौरीशंकर शिखर (माउन्ट एवरेस्ट) माना जाता है जो समुद्रतल से उनतीस हजार फुट अर्थात लगभग साढ़े पाँच मील ऊंचा है, समुद्र की अधिकतम गहराई बत्तीस हजार फुट अर्थात लगभग छै मील तक नापी जा चुकी है, इस प्रकार पृथ्वीतल की ऊंचाई नीचाई में साढ़े ग्यारह मील का अन्तर पाया जाता है।

पृथ्वी की ठंडी होकर जमी हुई परत सत्तर मील समझी जाती है। इसकी द्रव्यरचना के अध्ययन से अनुमान लगाया गया है कि उसे जमे हुए लगभग तीन करोड़ वर्ष हुए हैं। सजीव तत्त्व के चिन्ह केवल चौतीस मील की ऊपरी परत में पाये जाते हैं जिससे अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी पर जीव-तत्त्व उत्पन्न हुए दो करोड़ वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ है। उसमें भी मनुष्य के विकास के चिन्ह केवल एक करोड़ वर्ष के भीतर ही अनुमान किये जाते हैं।

पृथ्वीतल के ठंडे हो जाने के पश्चात् इसपर आधुनिक जीवशास्त्र के अनुसार जीवन का विकास इस क्रम से हुआ — सर्वप्रथम स्थिर जल के ऊपर जीव-कोश प्रकट हुए, जो पाषाणादि जड़ पदार्थों से मुख्यतः तीन बातों में भिन्न थे। एक तो वे आहार ग्रहण करते और बढ़ते थे। दूसरे वे इधर उधर हलचल भी कर सकते थे। और तीसरे वे अपने ही तुल्य अन्य कोश भी उत्पन्न कर सकते थे। कालक्रम से इनमें से कुछ कोश भूमि में जड़ जमाकर स्थावरकाय-वनस्पति बन गये, और कुछ जल में ही विकसित होते होते मत्स्य बन गये। क्रमशः धीरे धीरे ऐसे वनस्पति और मेंढक आदि प्राणी उत्पन्न हुए, जो जल में ही नहीं, किन्तु थल पर भी श्वासोच्छ्वास ग्रहण कर सकते थे। उन्हीं स्थल प्राणियों में से उदर के बल घसीट रेंग कर चलने वाले केंचुआ साँप आदि प्राणी उत्पन्न हुए। इनका विकास दो दिशाओं में हुआ — एक पक्षी, और दूसरे स्तनधारी प्राणी। स्तनधारी जाति की यह विशेषता है कि वे अंडे से उत्पन्न न होकर गर्भ से उत्पन्न होते हैं। और पक्षी अंडे से उत्पन्न होते हैं। मगर से लेकर भेड़, बकरी, गाय भैंस, घोड़ा आदि सब इसी स्तनधारी जाति के प्राणी हैं। इन्हीं स्तनधारी प्राणियों की एक वानर जाति उत्पन्न हुई। किसी समय कुछ वानरों ने अपने अगले दो पैर उठाकर पीछे के दो पैरों पर चलना सीख लिया। बस यहीं से मनुष्य जाति का विकास प्रारम्भ हुआ माना जाता है। उक्त जीवकोश से लगाकर मनुष्य के विकास तक प्रत्येक नई धारा उत्पन्न होने में लाखों करोड़ों वर्ष का अन्तर माना जाता है।

इस विकास क्रम में समय समय पर तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार नाना प्रकार की जीव-जातियां उत्पन्न हुईं। उनमें से अनेक जातियां समय के परिवर्तन, विप्लव, और अपनी अयोग्यता के कारण विनष्ट हो गईं, जिनका पता हमें भूगर्भ में उनके निखातकों द्वारा मिलता है।

पृथ्वीतल पर भूमि से जल का विस्तार लगभग तिगुना है। जल के विभागानुसार पृथ्वी के पांच प्रमुख खंड पाये जाते हैं — एशिया, यूरोप, और अफ्रीका मिलकर एक, उत्तरी दक्षिणी अमेरिका मिलकर दूसरा, आस्ट्रेलिया तीसरा, तथा चौथा उत्तरी ध्रुव, और पांचवां दक्षिणी ध्रुव। इनके अतिरिक्त अनेक छोटे मोटे द्वीप भी हैं। यह भी अनुमान किया जाता है कि सुदूर पूर्व में संभवतः ये प्रमुख भूमि भाग परस्पर जुड़े हुए थे। उत्तरी दक्षिणी अमेरिका की पूर्वी ~~सीमा~~ समुद्रतटीय रेखा ऐसी दिखाई देती है कि वह यूरोप अफ्रीका की पश्चिमी ~~सीमा~~ समुद्रतटीय रेखा के साथ मिलकर ठीक बैठ सकती है। तथा हिन्द महासागर के अनेक द्वीपसमूह की शृंखला एशिया खंड को आस्ट्रेलिया के साथ जोड़ती हुई दिखाई देती है। वर्तमान में नहरें खोदकर अफ्रीका का एशिया-यूरोप भूमिखंड से तथा उत्तरी अमेरिका का दक्षिणी अमेरिका से भूमि सम्बन्ध तोड़ दिया गया है। इन भूमि खंडों का आकार परिमाण और स्थिति ~~पर~~ परस्पर अत्यंत विषम है।

भारतवर्ष एशिया खंड का दक्षिणी-पूर्वी भाग है। यह त्रिकोणाकार है। दक्षिणी कोण लंका द्वीप को प्रायः स्पर्श करता है। वहां से भारतवर्ष की सीमा उत्तर की ओर पूर्व पश्चिम दिशाओं में फैलती हुई चली गई है और हिमालय पर्वत की श्रेणियों पर जाकर समाप्त होती है। भारत का पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण विस्तार लगभग दो हजार मील का है। इसकी उत्तरी सीमा पर हिमालय पर्वत है। मध्य में विन्ध्य और सतपुड़ा की पर्वतमालाएं हैं तथा दक्षिण के पूर्वी और पश्चिमी समुद्र-तटों पर पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट नामवाली पर्वत-श्रेणियाँ फैली हुई हैं।

भारतवर्ष की प्रमुख नदियों में हिमालय के प्रायः मध्य भाग से निकलकर पूर्व की ओर समुद्र में गिरने वाली ब्रह्मपुत्र और गंगा है। इनकी सहायक नदियों में यमुना, चम्बल, बेतवा, और सोन आदि हैं। हिमालय से निकलकर पश्चिम की ओर समुद्र में गिरनेवाली सिन्धु और उसकी सहायक नदियाँ झेलम, चिनाव, रावी, व्यास, और सतलज हैं। गंगा और सिन्धु की लम्बाई लगभग पन्द्रह सौ मील की है। देश के मध्य में विन्ध्य और सतपुड़ा के बीच पूर्व से पश्चिम की ओर समुद्र तक बहनेवाली नर्मदा नदी है। तथा सतपुड़ा के दक्षिण में ताप्ती नदी है। दक्षिण की प्रमुख नदियाँ गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है।

देश के उत्तर में सिन्धु से गंगा के ~~कछार~~ कछार तक प्रायः आर्यजाति के, सतपुड़ा से सुदूर दक्षिण में द्राविड़जाति के, एवं पहाड़ी प्रदेशों में गोंड, भील, कोल, और किरात आदि वासीजन ~~पहाड़ी~~ जातियों के लोग रहते हैं।

वर्तमान में उपलब्ध होने वाले इस आठ हजार मील विस्तृत और पच्चीस हजार मील परिधि वाले भूमंडल के चारों ओर अनंत आकाश है। जिसमें हमें दिन को सूर्य ~~मंडल~~, और रात्रि को ~~चंद्रग्रह~~ चंद्रमा एवं ताराओं के दर्शन होते हैं और उनसे प्रकाश मिलता है। उनमें पृथ्वी के सब से अधिक समीप में चंद्रमा है। जो इस भूमंडल से लगभग ढाई लाख मील दूर है। यह पृथ्वी के समान ही एक भूमंडल है जो पृथ्वी से बहुत छोटा है और उसी के ~~आस पास~~ चारों तरफ घूमा करता है। जिसके कारण हमारे यहाँ शुक्ल और कृष्णपक्ष होते हैं। चन्द्रमा में स्वयं प्रकाश नहीं है किन्तु वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है इसीलिए अपने परिभ्रमण के अनुसार घटता बढ़ता दिखाई देता है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि चंद्रमा बिल्कुल ठंडा हो गया है और पृथ्वी के गर्भ के समान अब उसमें अग्नि नहीं है। उसके आसपास वायुमंडल भी नहीं है और न उसके धरातल पर जल ही है। इन्हीं कारणों से वहाँ श्वासोच्छ्वास-प्रधान प्राणी और

श्वासोच्छ्वास

—— वनस्पति उपलब्ध नहीं है। वहाँ पर्वत तथा कन्दराओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, अनुमान किया जाता है कि चँद्रमा पृथ्वी का ही एक भाग है, जिससे टूटकर अलग हुए लगभग पाँच छैः करोड़ वर्ष हुए हैं।

चन्द्रमा से परे क्रमशः शुक्र, बुध, मंगल, बृहस्पति शनि आदि ग्रह हैं, जो सब पृथ्वी के समान ही भूमंडल वाले हैं। और सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं तथा सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। इन ग्रहों में से किसी में भी हमारी पृथ्वी के समान जीवों की संभावना नहीं मानी जाती है, क्योंकि वहाँ की परिस्थितियाँ जीवन के साधनों के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

इन ग्रहों से परे पृथ्वी से लगभग साढ़े नौ करोड़ मील की दूरी पर सूर्यमंडल है, जो पृथ्वी से लगभग पन्द्रह लाख गुना बड़ा है अर्थात् पृथ्वी के समान लगभग पन्द्रह लाख भूमंडल उसके गर्भ में समा सकते हैं। यह महाकाय सूर्यमंडल अग्नि से प्रज्वलित है। और उसकी ज्वालाएं लाखों मील तक उठती हैं। सूर्य की इन ज्वालाओं से करोड़ों मील विस्तृत सौरमंडल भर में प्रकाश और उष्णता फैलती है। जेम्स जीन्स का मत है कि इसी सूर्य की विछिन्नताओं से पृथ्वी, बुध, बृहस्पति, आदि ग्रह और उनके उपग्रह बने हैं जो सब अभी तक उसके आकर्षण से निबद्ध होकर उसी के आस पास घूम रहे हैं, हमारा भूमंडल सूर्य की परिक्रमा एक वर्ष में पूरी करता है और इसी के आधार पर हमारा वर्ष-मान अवलम्बित है। इसी परिक्रमण में पृथ्वी निरन्तर अपनी कीली पर भी घूमा करती है जिसके कारण हमारे यहाँ दिन और रात्रि हुआ करते हैं। जो गोलार्द्ध सूर्य के सन्मुख पड़ता है, वहाँ दिन, और शेष गोलार्द्ध में रात्रि होती है। वैज्ञानिकों का यह भी अनुमान है कि यह पृथ्वी आदि ग्रह-उपग्रह पुनः सूर्य की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

ऊपर जिस महाकाय सूर्यमंडल का उल्लेख किया गया है, जिसकी बराबरी का अन्य कोई भी ज्योतिर्मंडल आकाश भर में दिखाई नहीं देता है। किन्तु उससे यह नहीं समझना चाहिए कि उन अतिलघु दिखाई देने वाले तारों में सूर्य के समान महान् कोई एक भी नहीं है। वस्तुतः हमें जिन तारों का दर्शन होता है उनमें सूर्य से छोटे एवं सूर्य के बराबर वाले तारे तो बहुत थोड़े हैं उनमें अधिकांश तो सूर्य से भी बहुत विशाल हैं उससे सैंकड़ों हजारों लाखों गुने बड़े हैं। किन्तु उनके छोटे दिखाई देने का कारण यह है कि वे हमसे सूर्य की अपेक्षा बहुत अधिक दूरी पर हैं। तारों की दूरी समझने के लिए हमारे संख्या-वाचक शब्द काम नहीं देते, उसके लिए वैज्ञानिकों की दूसरी ही विधि है। प्रकाश की गणना गति प्रति सैकेन्ड एक लाख छियासी हजार (१८६,०००) मील तथा प्रति मिनिट एक करोड़ ग्यारह लाख साठ हजार (१११६००००) मील मापी गई है। इस प्रमाण से सूर्य का प्रकाश हमारी पृथ्वी तक आने में लगभग (८-९) आठ-नौ मिनिट लगते हैं। तारे हमसे इतने दूर हैं कि उनका प्रकाश हमारे समीप वर्षों में आ पाता है, और जितने वर्षों में वह आता है उतने ही प्रकाश-वर्ष की दूरी पर वह तारा कहा जाता है। सैंटोरी नामक अति निकटवर्ती तारा हमसे साढ़े चार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। क्योंकि उसके प्रकाश को हमारे पास तक आने में साढ़े चार वर्ष लगते हैं। इस प्रकार दस, बीस, पचास एवं सैंकड़ों प्रकाश-वर्षों की दूरी के ही नहीं, किन्तु ऐसे-ऐसे तारों का ज्ञान हो चुका है जिनकी दूरी दस लाख प्रकाश-वर्ष की मापी गई है तथा जो प्रमाण में हमारे सूर्य से भी लाखों गुने बड़े हैं। उस पृथ्वी से तो क्या — तारागणों की संख्या का पार नहीं है, हमें अपनी दृष्टि से तो अधिक से अधिक छठवें प्रमाण तक के लगभग छः सात हजार तारे ही दिखाई देते हैं, किन्तु दूरदर्शक यन्त्रों की जितनी शक्ति बढ़ती जाती है, उतने ही उत्तरोत्तर अधिकाधिक तारे दिखाई देते हैं। अभी तक बीसवें प्रमाण तक के तारों को देखने योग्य यंत्र बन चुके हैं, जिनके द्वारा दो अरब से

भी अधिक तारें देखे जा चुके हैं। किन्तु तारों की संख्या का अंत नहीं है, जेम्स जीन्स सदृश ज्योतिषी वैज्ञानिक का मत है कि तारों की संख्या हमारे पृथ्वी के समस्त समुद्र तटों की रेत के कणों के बराबर हो तो आश्चर्य नहीं। यह असंख्य तारें एक दूसरे से कितने दूर दूर हैं, उसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि सूर्य से अति निकटतम दूसरा तारा चार प्रकाश-वर्ष अर्थात् अरबों, खरबों मील की दूरी पर है, ये सब तारें बड़े वेग से गति-शील हैं, और उनका प्रवाह दो भिन्न दिशाओं में पाया जाता है।

लोक या ब्रह्माण्ड का आकार

इस प्रकार लोक का प्रमाण असंख्य है, और आकाश का कहीं अन्त दिखाई नहीं देता। किन्तु दृश्यमान लोक का आकार कुछ कुछ समझा गया है। तारागणों का आकाश में जिस प्रकार वितरण है, तथा आकाश-गंगा में जो तारा-पुञ्ज दिखाई देते हैं उनपर से अनुमान लगाया गया है कि समस्त तारामंडल रूपी लोक का आकार लेन्स के समान है अर्थात् ऊपर नीचे को उभरा हुआ, और बीच में फैला हुआ गोल है, जिसकी परिधि पर आकाशगंगा दिखाई देती है, और उभरे हुए भाग के मध्य में सूर्यमंडल है।

~~आज के वैज्ञानिक पृथ्वी को घूमती हुई मानते हैं।~~

(राहुल सांकृत्यायन-लिखित विश्व की रूपरेखा से)

आज के वैज्ञानिक पृथ्वी को घूमती हुई मानते हैं; किन्तु उस पर कुछ आपत्तियां हैं, जो चिन्तनीय हैं और जिससे उसका घूमना सन्दिग्ध हो जाता है।

भूभ्रमण-सिद्धान्त पर कुछ आपत्तियां

१. यदि पृथिवी घूमती है, तो पक्षी प्रातःकाल अपने घोंसले से उड़कर और दिनभर आकाश में उड़ते रहने पर भी सायंकाल उसी घोंसले में वापिस कैसे आ जाते हैं?

२. यदि पृथिवी घूमती है तो आकाश में छोड़े गये बाण विलीन क्यों नहीं हो जाते? तथा आकाश में फेंकी गई वस्तु विषम-गति-शील और दिशान्तर क्यों नहीं हो जाती?

३. यदि पृथ्वी की गति का मन्द होना इसमें कारण माना जाय, तो एक दिन-रात में इस विशाल पृथ्वी का पूरा भ्रमण कैसे हो जायगा?

४. इसके विपरीत यदि पृथ्वी का तीव्र वेग से परिभ्रमण माना जाय, तो इससे भूमण्डल पर ऐसा प्रचण्ड पवन चलेगा कि जिससे महल, मकान, वृक्ष और पर्वतादि की चोटियां छिन्न-भिन्न हो जायेंगी।

५. यदि पृथ्वी लगातार इतने गति करती हुई वर्ष भर में सूर्य का एक पूरा चक्कर लगाती है, तो ऋतुओं का परिवर्तन कैसे संभव है?

६. यदि पृथ्वी चलती है तो ध्रुवतारा उत्तर दिशा में सदा एक ही स्थान पर क्यों दिखाई देता है? पृथ्वी के साधारण दैनिक परिभ्रमण से सूर्य प्रतिदिन पूर्व से पश्चिम की ओर जाता हुआ दिखे और पृथ्वी के दैनिक-वार्षिक परिभ्रमण में भी ध्रुवतारा ज्यों का त्यों स्थिर खड़ा रहे, यह कैसे माना जाय?

७. उपर्युक्त प्रश्नों का कोई समुचित उत्तर भू-भ्रमणवादियों के पास नहीं है। इसके अतिरिक्त सूर्य उदय एवं अस्त-काल में रक्तवर्ण क्यों दिखता है और आसमान नीले रंग का ही क्यों दिखता है।

अन्तिम दोनों प्रश्नों का समुचित उत्तर जैन भूगोल-वर्णन से मिलता है, जहां बतलाया गया है कि भरत क्षेत्र में सूर्य का उदय और निषध पर्वत से होता है और अस्त भी उसी पर होता है। निषध पर्वत का वर्ण तप्त सुवर्ण के समान माना गया है। उसकी ऊंचाई चार सौ योजन है और सूर्य उससे भी चार सौ योजन ऊंचाई पर है। अतः उदय और अस्तकाल में सूर्य की प्रभा के उस पर पड़ने से आसमान रक्त वर्ण का दिखाई देने लगता है और उससे ऊपर आकाश में जाते ही रक्तवर्ण विलीन हो जाता है।

आसमान के नीले रंग दिखाई देने का कारण यह है कि हमारे इस मनुष्यलोक के ऊपर उतने ही विस्तार वाला उसके ऊपर एक लाख योजन तक लोकान्त तक का नन्दन विमान अवस्थित है। उसका तल भाग जैन शास्त्रों में नीलमणि का बतलाया गया है। उसी की आभा से हमें आसमान नीला दिखाई देता है।

तुलना एवं समीक्षा

ऊपर विष्णुपुराण के आधार पर जो लोक-स्थिति या भूगोल का वर्णन किया गया है, उसका जब हम जैन-सम्मत लोक के वर्णन से मिलान करते हैं तो अनेक तथ्य सामने आते हैं, जिनकी तुलना के लिए हम कुछ नाम-निर्देश और दोनों मान्यताओं के एक साथ कर रहे हैं:—

	जैन-मान्यता	वैदिक-मान्यता
	द्वीप	
1.	द्वीप और समुद्र ~~...~~ असंख्यात हैं।	द्वीप और समुद्र सात ही हैं; अधिक नहीं;
2.	प्रथम द्वीप का नाम जम्बूद्वीप	प्रथम द्वीप का नाम जम्बूद्वीप
3.	~~प्रथम समुद्र लवणोदधि~~	~~प्रथम समुद्र लवणोद~~
4.	कुशवर पन्द्रहवां द्वीप	कुश चौथा द्वीप
5.	क्रौंच सोलहवां द्वीप	क्रौंच पांचवां द्वीप
6.	पुष्कर तीसरा "	पुष्कर सातवां "
	समुद्र	
7.	लवणोद प्रथम समुद्र.	लवणोद प्रथम समुद्र
8	वारुणीरस चौथा "	मदिरारस तीसरा "
9	क्षीरसागर पांचवां "	दूधरस छठा "
10	घृतवर छठा "	मधुररस सातवां "
11	~~क्षौद्र~~ इक्षुरस सातवां "	इक्षुरस दूसरा "
12	तमस्काय —	तमस्तम —

क्षेत्रों की तुलना

1	भरतवर्ष	1 भारतवर्ष
2	हैमवत	2 किम्पुरुष
3	हरिवर्ष	3 हरिवर्ष
4	विदेह	4 उत्तरकुरु
5	रम्यक	5 रम्यक
6	हैरण्यवत	6 हिरण्मय
7	ऐरावत	7 इलावृत

यहां यह द्रष्टव्य है कि जैन मान्यता अनुसार उत्तरकुरु विदेह क्षेत्र का एक भाग है। इलावृत ऐरावत का ही रूपान्तर है। हां, दूसरे हैमवत क्षेत्र के स्थान पर किम्पुरुष नाम अवश्य नया है।

जैनमान्यता के समान वैदिकों में भी ७ भूमि के पाताल माने गये
पाताल
२

पर्वत-तुलना

जैन परम्परा	वैदिक परम्परा
१ हिमवान्	१ हिमवान्
२ महाहिमवान्	२ हेमकूट
३ निषध	३ निषध
४ नील	४ नील
५ रुक्मी	५ श्वेत
६ शिखरी	६ शृंगी

यहां यह ध्यान देने के योग्य है कि शिखरी और शृंगी एकार्थक नाम हैं। पांचवें रुक्मी पर्वत का वर्ण जैनमान्यतानुसार श्वेत ही माना गया है जो कि वैदिक मान्यता के श्वेत पर्वत का ही बोधक है। केवल महाहिमवान् के स्थान पर हेमकूट नाम नवीन है।

मेरु-तुलना

जैन और वैदिक दोनों ही मान्यताओं के अनुसार मेरु पर्वत जम्बूद्वीप के मध्यभाग में स्थित है। अन्तर केवल ऊंचाई का है। वैदिक मान्यता में मेरु चौरासी हजार योजन ऊंचा है, जबकि जैनमान्यता में वह एक लाख योजन ऊंचा है।

नदी नाम-वैषम्य

जैनमान्यतानुसार जम्बूद्वीप के सातों क्षेत्रों में १४ प्रधान नदियां हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं – गंगा-सिन्धु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा। प्रत्येक क्षेत्र में क्रमशः दो-दो नदियां बहती हैं। उनमें गंगा आदि युगलों में से प्रथम नदी पूर्व के समुद्र में और दूसरी नदी पश्चिम की ओर बहकर पश्चिम समुद्र में मिलती है। वैदिक मान्यतानुसार जो नदियों के नाम दिये गये हैं, वे सब आधुनिक नदियों के ही नाम हैं, उनका इन नामों से कोई सिद्ध नहीं [illegible]

नरक-स्थिति

जैन-मान्यता के समान ही वैदिक मान्यता में भी अत्यन्त दुःख भोगने वाले नारकी जीवों का अवस्थान इस भूमण्डल के नीचे ही माना गया है। दोनों के कुछ नामों में समता है और कुछ नामों में विषमता है।

ज्योतिर्लोक-विभिन्नता

जैन मान्यता में भूमितल से सूर्य, चन्द्र आदि की ऊंचाई का जो उल्लेख है, उससे वैदिक मान्यता में बहुत भारी अन्तर है, जो दोनों के पूर्व-वर्णित स्थलों से पाठक गण मिलान के साथ जान लेंगे।

(पीछे देखें)

स्वर्गलोक की स्थिति

दोनों ही मान्यताओं के अनुसार स्वर्गलोक की स्थिति ज्योतिर्लोक के ऊपर [illegible]
वैदिक मान्यता में स्वर्गलोक का नाम महर्लोक दिया गया है, तथा वहां के [illegible]
जैन मान्यता के समान कल्पवासी ही कहा गया है। वैदिक मान्यता में स्वर्ग [illegible]
सूर्य और ध्रुव के मध्य में चौदह लाख योजन प्रमाण क्षेत्र में है, जबकि [illegible]
वह सुमेरु के ऊपर से लेकर असंख्यात योजन ऊपरी क्षेत्र तक बतलाई गई [illegible]

वैदिक ग्रन्थों में

कर्मभूमि और भोगभूमि के उल्लेख

जिस प्रकार जैन आगमों एवं शास्त्रों में कर्मभूमि, भोगभूमि और उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी काल का वर्णन आया है, इसी प्रकार के उल्लेख हिन्दू पुराणों में भी मिलते हैं। विष्णुपुराण के द्वितीय अंश के तीसरे अध्याय में उसका (कर्मभूमि) वर्णन इस प्रकार है —

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥१॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने।
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ॥२॥
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयान्ति वै।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ॥४॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तश्च गम्यते।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते ॥५॥

अर्थात् — समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में भारत वर्ष अवस्थित है। इसका विस्तार नौ हजार योजन है। यह स्वर्ग और मोक्ष जाने वाले पुरुषों की कर्मभूमि है। इसी स्थान से मनुष्य स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त करते हैं, और यहीं से वे तिर्यञ्च और नरकगति को भी जाते हैं, अतः यह कर्मभूमि है। इस भारत वर्ष के सिवाय अन्य क्षेत्रों में कर्मभूमि नहीं है, इससे वहाँ के लोग उक्त स्थानों को प्राप्त नहीं करते हैं।

और भी कर्मभूमि का वर्णन देखिये —

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुधवाणिज्याद्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥९॥

अर्थात् इस भारतवर्ष के मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं, और वे क्रमशः पूजन-पाठ, आयुध-धारण, वाणिज्य और सेवादि कार्य करते हुए व्यवस्थित हैं।

इस अध्याय के अन्त में उक्त कथन का उपसंहार करते हुए लिखा है —

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ॥२२॥

हे मुने, इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यहां पर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कराने वाली कर्मभूमि है। इस भारतभूमि के सिवाय अन्य सर्व क्षेत्रों की भूमियां तो भोगभूमि हैं।

(पीछे देखें)

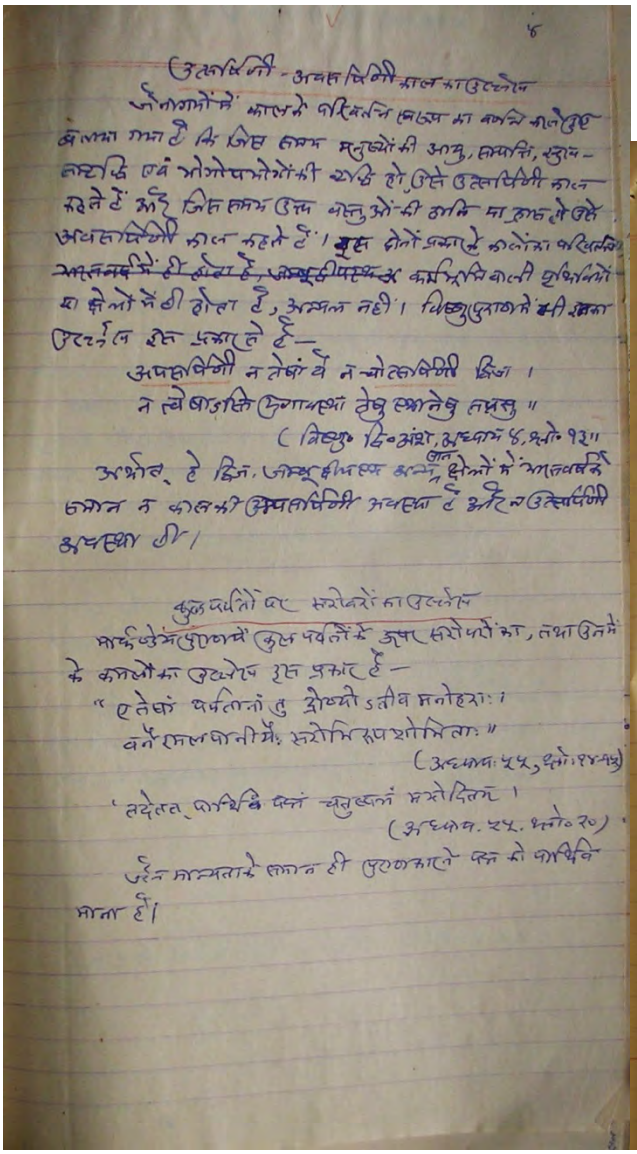

४

उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी काल का उल्लेख

जैनागमोंमें कालके परिवर्तन क्रम का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि जिस समय मनुष्योंकी आयु, सम्पत्ति, सुख-समृद्धि एवं भोगोपभोगोंकी वृद्धि हो, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं और जिस समय उक्त वस्तुओंकी हानि या ह्रास हो उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। इन दोनों प्रकारके कालोंका परिवर्तन ~~भारतवर्षमें ही होता है, जम्बूद्वीपस्थ~~ कर्मभूमि वाली पृथिवियों या क्षेत्रोंमें ही होता है, अन्यत्र नहीं। विष्णुपुराणमें भी इसका उल्लेख इस प्रकार है—

अवसर्पिणी न तेषां वै न चोत्सर्पिणी द्विज।
न त्वेवास्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु॥
(विष्णु० द्वि० अंश, अध्याय ४, श्लो० १३)

अर्थात् हे द्विज, जम्बूद्वीपस्थ अन्य सात क्षेत्रोंमें भारतवर्षके समान न कालकी अवसर्पिणी अवस्था है और न उत्सर्पिणी अवस्था ही।

कुलपर्वतों पर सरोवरों का उल्लेख

मार्कण्डेय पुराणमें कुल पर्वतोंके ऊपर सरोवरोंका, तथा उनमें के कमलोंका उल्लेख इस प्रकार है—

"एतेषां पर्वतानां तु द्रोण्योऽतीव मनोहराः।
वनैरमलपानीयैः सरोभिरुपशोभिताः॥"
(अध्याय ५५, श्लो० १४-१५)

'तदेतत् पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम्।'
(अध्याय ५५, श्लो० २०)

जैन मान्यताके समान ही पुराणकारने पद्मको पार्थिव माना है।

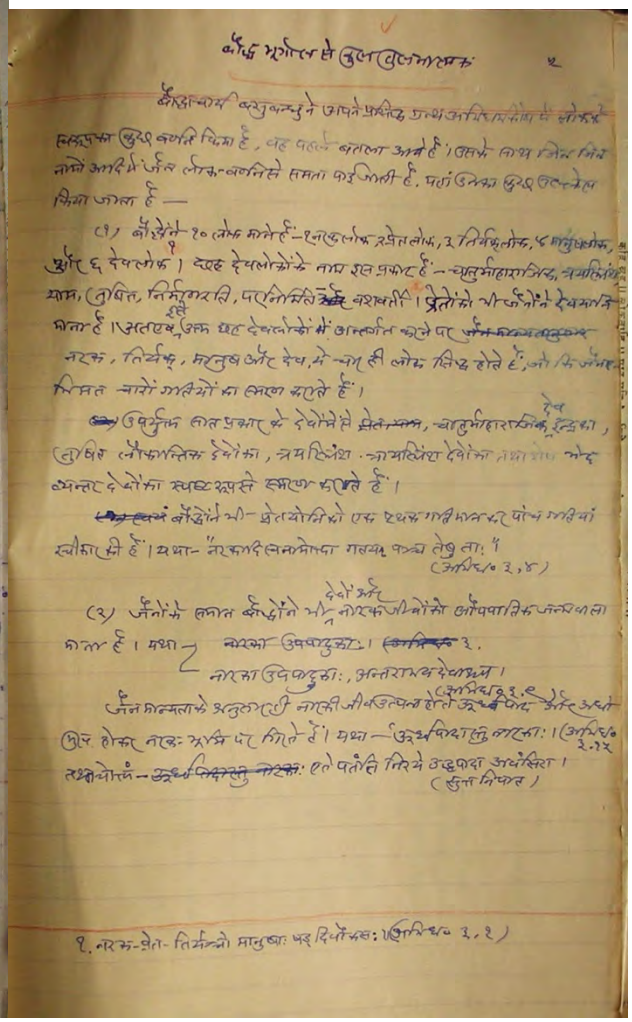

बौद्ध भूगोल से कुछ तुलनात्मक ५

बौद्धाचार्य वसुबन्धु ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अभिधर्मकोश में लोकके स्वरूपका कुछ वर्णन किया है, वह पहले बतला आये हैं। उसके साथ जैन भिन्न नामों आदिमें जैन लोक-वर्णनसे समता पाई जाती है. यहां उनका कुछ उल्लेख किया जाता है—

(१) बौद्धोंने १० लोक माने हैं[1]—१ नरकलोक, २ प्रेतलोक, ३ तिर्यग्लोक, ४ मनुष्यलोक, और ६ देवलोक। छह देवलोकोंके नाम इस प्रकार हैं—चातुर्महाराजिक, त्रायस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माणरति, परनिर्मित वशवर्ती। प्रेतोंको भी जैनोंने देवगति माना है। अतएव, उक्त छह देवलोकोंमें अन्तर्गत करने पर ~~जैन मान्यतानुसार~~ नरक, तिर्यक्, मनुष्य और देव, ये चार ही लोक सिद्ध होते हैं, जो कि जैनाभिमत चारों गतियों का स्मरण कराते हैं।

उपर्युक्त सात प्रकार के देवोंमेंसे ~~प्रेत-याम~~, चातुर्महाराजिक देव इन्द्रका, तुषित लौकान्तिक देवोंका, त्रयस्त्रिंश · त्रायस्त्रिंश देवोंका तथा शेष जैन व्यन्तर देवोंका स्पष्ट रूपसे स्मरण कराते हैं।

बौद्धोंने भी प्रेतयोनिको एक पृथक् गति मान कर पांच गतियां स्वीकार की हैं। यथा— "नरकादिस्वनामोक्ता गतयः पञ्च तेषु ताः।"
(अभिध० ३, ४)

(२) जैनोंके समान बौद्धोंने भी देवों और नारक जीवोंको औपपातिक जन्मवाला माना है। यथा— ~~नरका उपपादुकाः। अभिध० ३.~~
नारका उपपादुकाः, अन्तराभवदेवाश्च।
(अभिध० ३.९)

जैन मान्यताके अनुसार ही नारकी जीव उत्पन्न होते ऊर्ध्व पाद और अधो मुख होकर नरक-भूमि पर गिरते हैं। यथा—ऊर्ध्वपादास्तु नारकाः। (अभिध० ३.१२)
तथाचोक्तं— ~~ऊर्ध्वपादास्तु नारकाः~~ एते पतन्ति निरये उद्धपादा अवंसिरा।
(सुत्त निपात)

१. नरक-प्रेत-तिर्यञ्चो मानुषाः षड् दिवौकसः। (अभिध० ३, १)

1950 Notes for the cosmology article

(१) गंगा का उद्गम स्थान — स्वर्ग लोक से ब्रह्मपुरी में मेरु (पामीर) पर्वत पर गिरती है। पामीर की ऊँचाई समुद्रतल से १२,००० फुट है। यहाँ पर तुषारी वातावरण है अतः यहाँ के निवासी को हिमानी या हिमवान भी कहते हैं।

(२) सप्त महाद्वीप — १ जम्बू २ प्लक्ष, ३ शाल्मल, ४ कुश, ५ क्रौंच, ६ शाक और ७ पुष्कर। 'सप्तद्वीपा वसुमती' (मार्कण्डेय पुराण)।

(३) जम्बूद्वीप — विष्णु पुराण में — समस्त द्वीपों के मध्य जम्बू, उसके मध्य मेरु और उसमें भारतवर्ष आदि का वर्णन है (प्रमाण देना)

(४) सुमेरु के उत्तर में उत्तर कुरु, दक्षिण में भारतवर्ष, पूर्व में भद्राश्ववर्ष और पश्चिम में केतुमालवर्ष है। (श्री विष्णु पुराण)

(५) ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार सुमेरु के दक्षिण में हरि, किम्पुरुष और भारत हैं। उत्तर में उत्तर कुरु, हिरण्मक और रम्यक हैं। इन छहों के मध्य इलावृत वर्ष है।

(६) हिमवत या हिमवान [illegible] सुमेरु के दक्षिण में है। [illegible] हेमकूट और निषध भी मेरु के उत्तर में बताये हैं।

(७) प्लक्षद्वीप — कुछ पुराणों में इसका नाम 'गोमेद' भी है। इसे दो लाख योजन का कहा है स्कन्द। मत्स्य और वराह पुराण में प्लक्षद्वीप के चारों ओर दो लाख विस्तार इक्षुरस समुद्र का उल्लेख है।

(८) शाल्मली द्वीप के चारों ओर सुरा समुद्र है जो जैन ग्रन्थ वर्णित वारुणीवर समुद्र की याद दिलाता है।

(९) मत्स्य, स्कन्द, वराह आदि के अनुसार शाक द्वीप के चारों ओर क्षीरसागर है।

(१०) विष्णु और ब्रह्म पुराण के अनुसार पुष्कर द्वीप के मध्य में गोलाकार मानसोत्तर पर्वत है जो कि स्पष्टतः मानुषोत्तर का ही रूपान्तर है। इससे विभक्त भीतरी भाग का नाम धातकी वर्ष और बाहरी का नाम महावीत वर्ष कहा है।

(११) विभिन्न पुराणों में इन द्वीप-सागरों का वर्णन परस्पर विरोध लिए हुए है। तथापि वह उक्त द्वीपों व सागरों के अस्तित्व को प्रकट करता है। भले ही उनकी स्थिति [illegible] नहीं हो।

(१२) महाभारत में 'हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः' कहा है। बौद्ध साहित्य में भी मेरु को ही कैलाश कहा है।

ज्योतिर्विज्ञान में ... [illegible] ज्योतिष्कों, उपग्रहों, नक्षत्रों की गति-विधि आदि की गहराई से छानबीन की है। पृथ्वी से चन्द्र की दूरी, सूर्य की व्यास-परिधि, भ्रमण कक्षा, उसके वातावरण, दैनिक परिभ्रमण, नक्षत्र-सन्निवेश, पृथ्वी की परिधि से उनका कब किस प्रकार से संबंध, ग्रहण की स्थिति, उदय और लोप आदि का हजारों वर्ष पूर्व जो ठीक-ठीक नाप-तोल के साथ लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है वह किसी भी विज्ञान के लिए विस्मयजनक है। लाखों करोड़ों तारों में से उनके विशिष्ट गुण-धर्म को खोजकर उनकी समस्त गति-विधियों का गणना-क्रम से प्रस्तुत कर देना और वह भी किसी वैज्ञानिक आधुनिक यांत्रिक उपकरण के बिना, सहस्राब्दियों पूर्व ही [illegible] आश्चर्य का विषय है। [illegible] उष्ण धरातल, पर्वत, ज्वालामुखियों की कल्पना, उसके अग्निरस (लावा) की रचना वैदिक और ज्योतिर्विज्ञान साहित्य ने दी है।

(ले० पं० हर्षनारायण व्यास, हिन्दुस्तान २३ जुलाई (१९८२))

चन्द्र के विषय में

चांद एक निर्जीव पिंड है, वायु और पानी रहित, निर्जल। उल्कापातों से आघात, ज्वालामुखियों, [illegible] सूर्य किरणों के प्रकोप से ग्रस्त। उसकी सतह पर ज्वालामुखी हैं जिनका व्यास कुछ इंच से लेकर २५० किलोमीटर है। उसमें स्थित पर्वत की चोटियां सतह से हजारों फुट ऊंची हैं।

चांद के बारे में कुछ तथ्य इस प्रकार हैं

व्यास ३४७६ कि.मी. पृथ्वी का चतुर्थांश।

परिधि - १०८६४ कि.मी.

पृथ्वी से दूरी - ३८४४०१ कि.मी.

चन्द्रतल का तापमान - ११७ से॰ ग्रे॰ सूर्य की किरणें पड़ने पर, १३७ से॰ (रात में)

आयतन का तुलनात्मक रूप - पृथ्वी का ५०वां अंश - पृथ्वी पर जिस वस्तु का वजन २७ किलो है वह चांद पर ४.५ किलो होगी।

चन्द्र विमान का बिंब पृथ्वी का १००वां अंश - और उसका आयतन पृथ्वी के आयतन का ५०वां भाग है।

चन्द्रकक्षा की गति ३६६८ कि.मी. प्रति घंटा है।

चांद को पृथ्वी की परिक्रमा करने में २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनिट लगते हैं। क्योंकि वह लगभग इसी गति से अपनी धुरी पर घूमता है इसलिए उसका एक भाग ही इसकी जननी पृथ्वी की ओर रहता है।

(हिन्दुस्तान, २३ जुलाई १९६९ से)

वैदिक तथा पुराणादि ग्रन्थों का विचार

(१) विष्णुपुराण. द्वितीय अंश. अध्याय ८ श्लोक २-१०।

(२) सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः। " " २०।

(३) सूर्य घूमता है - द्वि॰ अं॰ अ॰ ८. श्लो. २७।

(४) १५ निमेष = १ काष्ठा।
३० काष्ठा = १ कला।
३० कला = १ मुहूर्त।
३० मुहूर्त = १ अहोरात्र। " " " ५९

(५) सूर्य के कर्कादि राशियों का भोग ~~दक्षिणायन~~ दक्षिणायन और मकरादि राशियों का भोग उत्तरायण। (पृ॰ १३०) श्लो. ६५-६६

(६) ऋतु छः होते हैं। (विष्णु॰ पृ॰ १३)

(७) सूर्य [illegible] - ~~[illegible]~~ का वर्णन पृ॰ १३५, श्लो॰ २। [illegible] (विष्णुपुराण पृ॰ १३५) श्लो॰ २२।

(८) पृथ्वी से सूर्य १ लाख योजन दूर है और उससे चन्द्रमा १ लाख योजन दूर है। चन्द्र से १ लाख योजन पर नक्षत्र मंडल है। (देखो - विष्णु॰ पृ॰ १४१, श्लो॰-५-६)
उससे ऊपर बुध आदि हैं। (" " ७-८

(९) उत्सर्पिणी अवसर्पिणी का वर्णन (पृ॰ १३८)

[illegible]
[illegible]

जरूरी

पृथ्वी परिभ्रमण [illegible] सूर्य आपत्तियां [illegible] की विवरणी पृ० २०० से देखना है

(१) यदि पृथ्वी चलती है, तो पृथ्वी पर रहने वाले प्रात: लोगों को [illegible] पश्चिम [illegible] नहीं आ जाते हैं ?

(२) आकाश में [illegible] विमान क्यों नहीं हो जाते ? आकाश में [illegible] और दिशान्त क्यों नहीं हो जाते ?

(३) यदि पृथ्वी की गति [illegible] होना इतने [illegible] माना जाय तो [illegible] में इस विशाल पृथ्वी का [illegible] हो जायगा.

इसके विपरीत यदि पृथ्वी [illegible] माना जाय तो इसके ऊपर [illegible] जिससे [illegible] मकान, वृक्ष, पर्वतादि की चोटियां आदि [illegible] छिन्न-भिन्न हो जायेंगे

(४) यदि पृथ्वी [illegible] गति [illegible] में सूर्य का [illegible] लगता है तो ऋतुओं का परिवर्तन कैसे संभव है ?

(५) यदि पृथ्वी [illegible] दिखाई देता है ? पृथ्वी के [illegible] दैनिक परिभ्रमण से [illegible] पूर्व से पश्चिम जाता हुआ दिखे और पृथ्वी के दैनिक-वार्षिक भ्रमणों में [illegible] रहे-पद कैसे पाल जाय ?

उक्त प्रश्नों का कोई [illegible] भू-भ्रमण [illegible] के पास नहीं है

महत्वपूर्ण [illegible] उदय और अस्त [illegible] में [illegible] क्यों [illegible] है ?

२- [illegible] क्यों [illegible] हैं ?

आज का विज्ञान इन प्रश्नों का कोई [illegible] नहीं देता —

जबकि [illegible] विज्ञान के [illegible] होता है

[illegible] में [illegible]

पृ० १८ – [illegible] नहीं ? क्या मतलब ?

[illegible]

पृ० २० – चार [illegible] – क्या मतलब ?

" २३-२४ – [illegible] प्रदेश क्या ? [illegible] कहे गये हैं – (देखो . . .)

" २४ – [illegible] ५ – [illegible] " " ( )
तथा [illegible] १-१ [illegible]

" २६ – अधोलोक – [illegible] और गोल एक ही है ।

– २८-२९ – ? [illegible] दिखाई नहीं जाते – [illegible] वर्षों की [illegible] है ? मतलब है

पृ० ३० – [illegible] द्वि; द्वि $\frac{1}{2}$, द्वि $\frac{1}{3}$ [illegible] नहीं है [illegible] है. जो कि

पृ० ३२-३३ को [illegible] (देखो [illegible] २०७-२०४)

पृ० ३३ – [illegible] नहीं है

" ३६ – [illegible] और [illegible] का [illegible] नहीं है

" ४४ – [illegible] का वर्णन [illegible] है [illegible] आदि [illegible] है

" ४० की [illegible] वर्णन [illegible] ३५०२ गा. २८ आदि ।

[illegible]

पृ० १२८ – [illegible] के मनुष्यों की [illegible] आदि [illegible] और [illegible] है । इनमें [illegible] नहीं ।

" १४७ – [illegible] का वर्णन [illegible] नहीं

जरूरी

१ [illegible], जम्बू द्वीप, अढ़ाई द्वीप, [illegible] द्वीप आदि [illegible] दिखाना जरूरी है

पृ० २०९ [illegible] और [illegible] है [illegible]

" २२५ – [illegible] के अनुसार [illegible] नहीं करते हैं : मतलब [illegible]

" २४९ – [illegible] कोई [illegible] नहीं

કાદમ્બિની - હિન્દુસ્તાન પ્રેસ, દિલ્હી.

૨૩ જુલાઈ સન ૧૯૬૯ના હિન્દુસ્તાન

रज्जु —

सिन्धु घाटी सभ्यता में उपलब्ध जाय रज्जु मापिओ ।
उत्तर रज्जु माप ... लोकाकाश रज्जु ओ ...
(प्रवचन सारोद्धार १९३८ गा.

८६ अनाहिद —

गणितानुयोग के ६०२१० से लिखा गया है लोक
६०४ के भीतर:

ई. ५३

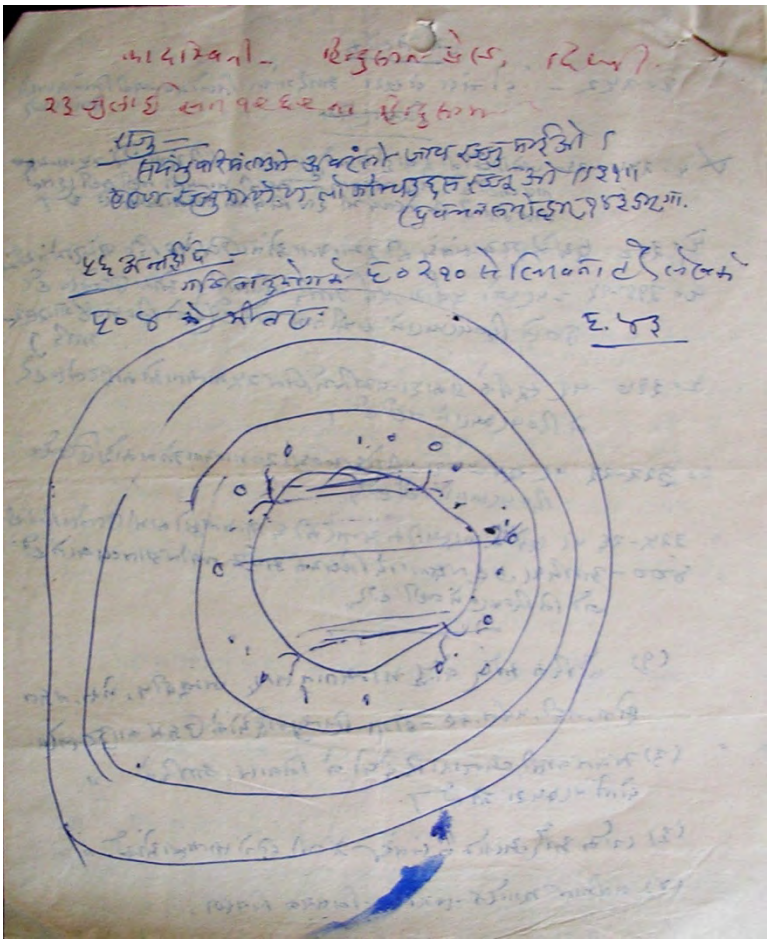

1936 Spherical or flat earth

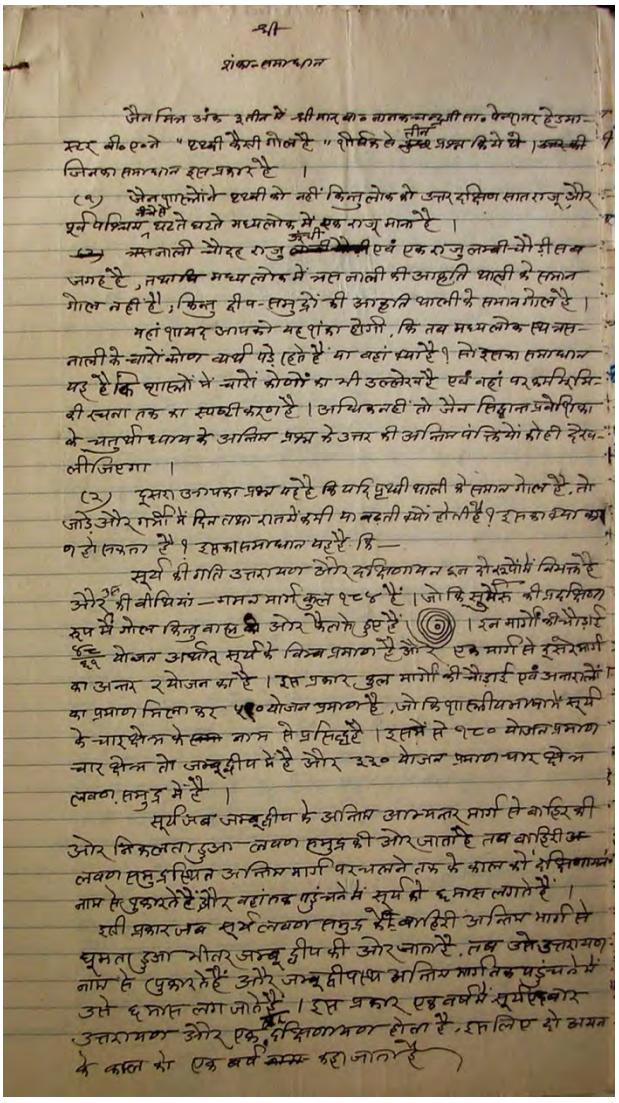

श्री

शंका-समाधान

जैन मित्र अंक ३ तीन में श्रीमान् बा० नानकचन्दजी सा० पेन्शनर हेडमास्टर बी० ए० ने "पृथ्वी कैसी गोल है" शीर्षक से ~~कुछ~~ तीन प्रश्न किये थे। ~~उनकी~~ जिनका समाधान इस प्रकार है।

(१) जैनशास्त्रोंने पृथ्वी को नहीं किन्तु लोक को उत्तर दक्षिण सात राजू और पूर्व पश्चिम कमसे घटते घटते मध्यलोक में एक राजू माना है।

~~(२)~~ त्रसनाली चौदह राजु ~~लम्बी चौड़ी~~ ऊंची एवं एक राजु लम्बी-चौड़ी सब जगह है, तथापि मध्यलोक में त्रस नाली की आकृति थाली के समान गोल नहीं है; किन्तु द्वीप-समुद्रों की आकृति थाली के समान गोल है।

यहां शायद आपको यह शंका होगी, कि तब मध्यलोक स्थ त्रसनाली के चारों कोण व्यर्थ पड़े रहते हैं या वहां क्या है? तो इसका समाधान यह है कि शास्त्रों में चारों कोणों का भी उल्लेख है एवं वहां पर कर्मभूमि-की रचना तक का स्पष्टीकरण है। अधिक नहीं तो जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के चतुर्थाध्याय के अन्तिम प्रश्न के उत्तर की अन्तिम पंक्तियों को ही देख-लीजिएगा।

(२) दूसरा आपका प्रश्न यह है कि यदि पृथ्वी थाली के समान गोल है, तो जाड़े और गर्मी में दिन तथा रात में कमी या बढ़ती क्यों होती है? इसका क्या कारण हो सकता है? इसका समाधान यह है कि—

सूर्य की गति उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो रूपों में विभक्त है और ३६ की वीथियां—गमन मार्ग कुल १८४ हैं। जो कि सुमेरु की प्रदक्षिणा रूप में गोल किन्तु बाहर ~~की~~ ओर फैलते हुए हैं   । इन मार्गों की चौड़ाई ४८/६१ योजन अर्थात् सूर्य के बिम्ब प्रमाण है और एक मार्ग से दूसरे मार्ग का अन्तर २ योजन का है। इस प्रकार कुल मार्गों की चौड़ाई एवं अन्तरालों का प्रमाण मिला कर ५१० योजन प्रमाण है, जो कि शास्त्रीय भाषा में सूर्य के चार क्षेत्र के ~~नाम~~ नाम से प्रसिद्ध है। इसमें से १८० योजन प्रमाण चार क्षेत्र तो जम्बूद्वीप में है और ३३० योजन प्रमाण चार क्षेत्र लवण समुद्र में है।

सूर्य जब जम्बूद्वीप के अन्तिम आभ्यन्तर मार्ग से बाहिर की ओर निकलता हुआ लवण समुद्र की ओर जाता है तब बाहिरी ~~अ~~ लवण समुद्र स्थित अन्तिम मार्ग पर चलने तक के काल को दक्षिणायन नाम से पुकारते हैं और वहां तक पहुंचने में सूर्य को ६ मास लगते हैं।

इसी प्रकार जब सूर्य लवण समुद्र के बाहिरी अन्तिम मार्ग से घूमता हुआ भीतर जम्बू द्वीप की ओर जाता है, तब उसे उत्तरायण नाम से पुकारते हैं और जम्बूद्वीपस्थ अन्तिम मार्ग तक पहुंचने में उसे ६ मास लग जाते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में सूर्य एक बार उत्तरायण और एक बार दक्षिणायन होता है, इसलिए दो अयन के काल को एक वर्ष ~~कहा~~ कहा जाता है।

इस विवेचन का तात्पर्य यह है कि जब सूर्य दक्षिणायन होता है अर्थात् जम्बूद्वीप के भीतरी भाग से बाहर की ओर जाता है उस समय क्रमशः गर्मी घटने लगती है और सर्दी बढ़ने लगती है। ऐसा होने के दो कारण हैं कि प्रथम तो यह, कि वह स्थल-द्वीप से दूर होने लगता है अत- उसकी किरणों की गर्मी यहां कम पड़ने लगती है। और दूसरा यह, कि जब सूर्य की चाल समुद्र पर पहुंच जाती है, तो उसकी किरणों के समुद्र पर पड़ने से उनका उत्ताप कम हो जाता है, जिससे जम्बूद्वीप में सर्दी प्रतीत होने लगती है, यहां तक कि जब वह समुद्र में अन्तिम मार्ग पर पहुंच जाता है, तब जम्बूद्वीप में सबसे अधिक सर्दी पड़ने लगती है।

— इस दक्षिणायन का प्रारंभ कर्क संक्रान्ति- संभवतः आषाढ़ सुदी १५ के लगभग और समाप्ति मकर संक्रान्ति- संभवतः पौषसुदी १५ या माघ के प्रारंभिक दिनों में होती है। इसलिए सूर्य के बाहर जाने से यहां पर दिन घटने एवं रात बढ़ने लगती है यहां तक कि जब दक्षिणायन के प्रारंभ में दिन १८ मुहूर्त का और रात १२ मुहूर्त की होती थी, तब दक्षिणायन के अन्त में दिन १२ मुहूर्त का और रात्रि १८ मुहूर्त की होने लगती है। यह सूर्य के दक्षिणायन काल में दिन रात के कम-बढ़ होने का कारण है।

इसी प्रकार जब सूर्य उत्तरायण होता है, अर्थात् लवण समुद्र के बाहरी भाग से भीतर की — जम्बूद्वीप की ओर जाता है — उस समय क्रमशः सर्दी घटने लगती है और गर्मी बढ़ने लगती है। ऐसा होने के भी दो कारण हैं, प्रथम तो यह कि उसके जम्बूद्वीप के समीप आने से उसकी किरणों का प्रभाव यहां अधिक पड़ने लगता है, दूसरा यह, कि उसकी किरणें जो कि समुद्र के अगाध जल के कारण ठंडी पड़ जाती थीं, क्रमशः जम्बूद्वीप की ओर गहराई कम होने एवं स्थल भाग पर पड़ने से संताप अधिकाधिक बढ़ता जाता है, इसलिए यहां गर्मी बढ़ने लगती है, यहां तक कि जब सूर्य जम्बूद्वीप के भीतरी अन्तिम मार्ग पर पहुंच जाता है तब यहां पर सबसे अधिक गर्मी पड़ने लगती है।

इस उत्तरायण का प्रारंभ मकर संक्रान्ति को और समाप्ति कर्क संक्रान्ति पर होती है। इसलिए इस उत्तरायण में सूर्य के जम्बूद्वीप पर घूमने से यहां पर दिन बढ़ने एवं रात घटने लगती है, यहां तक कि जब उत्तरायण के प्रारंभ में दिन १२ मुहूर्त और रात १८ मुहूर्त का होता थी, सो क्रमशः उत्तरायण के अन्त में दिन १८ मुहूर्त का और रात्रि १२ मुहूर्त का होने लगती है। बस, यही ही उत्तरायण में गर्मी में दिन-रात को घटने-बढ़ने का कारण है।

शंका—

यहां पर आपको एक शंका किसी हो सकती है कि जब सूर्य बाहिर की ओर जाता है, तब उसे सुमेरु की प्रदक्षिणा के रूप में बहुत लम्बा चक्कर लगाना पड़ता है. ऐसी दशा में यहां दिन घटने के बजाय बढ़ना ही चाहिए। इसी प्रकार जब सूर्य भीतर की ओर आता है, तब उसे सुमेरु की प्रदक्षिणा में चक्कर कम लगाना पड़ता है, अतएव दिन उस समय छोटा होना चाहिए। पर आपने ऐसा न बताकर ठीक इससे विपरीत ही बतलाया है, तो इसका क्या कारण है?

समाधान

यदि सूर्य की गति में तीव्रता या मन्दता न होती, तब उक्त शंका सर्वथा लागू होती। किन्तु जैन शास्त्रों में सूर्य की चाल में तीव्रता मंदता को माना है, अर्थात् सूर्य दक्षिणायन के प्रारंभ में हाथी जैसी मन्द चाल से घूमता है, धीरे २ ज्यों ही वह बाहिर की ओर आने लगता है, त्यों ही उसकी चाल बढ़ने लगती है - यहां तक कि दक्षिणायन के अन्त में एकदम सिंह चाल से सूर्य की गति होने लगती है। इसी प्रकार उत्तरायण के प्रारंभ में सूर्य विम्ब की सिंह चाल रहती है किन्तु ज्यों २ सूर्य भीतर २ जम्बूद्वीप की ओर आने लगता है, त्यों २ उसकी चाल धीमी हो जाती है, और अन्त में हाथी की चाल से घूमने लग जाता है, इसलिए उक्त कथन में कोई विरोध नहीं आता।

इसी दूसरे प्रश्न के अन्त में आपने पूछा है, कि "किसी २ देश में दिन रात की कमी बेशी बहुत ज्यादा है, और कहीं कहीं बहुत कम है, इसका क्या कारण है? इसके उत्तर में मेरा यह कहना है कि बहुत अच्छा होता, यदि आप उन देशों का भी उल्लेख कर देते, जिनमें यह कमी नियमित रूप से निश्चित विद्यमान है। साथ ही यह भी उल्लेख करना आवश्यक था, कि वे देश भारतवर्ष से, दक्षिण पश्चिम या उत्तर किधर की ओर और कितनी दूरी पर स्थित हैं, एवं वहां के दिन में कितना फर्क है, तो उस पर निश्चित उत्तर देने का प्रयास किया जाता। अस्तु, इसका संक्षिप्त उत्तर यही है, कि यद्यपि जम्बूद्वीप की पृथ्वी थाली के ही समान समतल है किन्तु फिर भी वर्तमान भरत क्षेत्र की पृथ्वी में कल्पना से भी अधिक ऊंचाई एवं विषमता आ गई है, जिसके लिए पहला एवं पुष्ट प्रमाण तो "भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्" है।

शायद इस पर आप या पाठकगण चौंकें, कि यह सूत्र भरतैरावत की पृथिवियों में थोड़े ही हानि-वृद्धि बतलाता है किन्तु तत्स्थ मनुष्यादिकों की ही बतलाता है, सो इसका समाधान, इसके आगे का —

"तास्मामपरी भूम्यो ऽवस्थिताः" सूचनी कर देता है। यह ठीक है, कि इस पर अनेकों विद्वानों की दृष्टि न पहुंची होगी, किन्तु श्लोकवार्तिककार ने तो साफ शब्दों में इसे स्वीकार किया ही है और मुख्यरूप से यही अर्थ मानना भी चाहिए था, गौण रूप से तत्स्थ-पुद्गलादिकों का भी ग्रहण मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

दूसरा मुख्य प्रमाण- त्रिलोकसार की नं० की गाथा है, जहां पर प्रलय काल के अन्त में यहां की पृथ्वी का एक योजन-करीब चार हजार मील प्रमाण विध्वस्त होना एवं चित्रा पृथ्वी का प्रगट होना माना है। जिससे वर्तमान की मानी जानेवाली भूगोल के भी जैन शास्त्रानुसार अर्धसत्यता या आंशिक सत्यता सिद्ध हो जाती है, एवं समतल की प्रदक्षिणारूप अर्धनारंगी के समान गोलाई भी सिद्ध हो जाती है।

शंका —

संभवतः आप यह शंका करेंगे, कि जब अर्धगोलाई को आप जैन शास्त्रानुसार मानने को तैयार हैं, तो पूरी नारंगी के समान ही पृथ्वी को गोल क्यों नहीं मान लेते।

समाधान —

जो बात युक्ति, आगम और अनुभव से सिद्ध हो जावे, उसे हमें मानने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु वर्तमान के भौगोलिकों ने भी तो समतल की अर्धनारंगी रूप पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा की है, न कि ऊपर से नीचे की गोलाई रूप पृथ्वी की। वह तो केवल कल्पना से ही मानी जा रही है, कि जब ऊपरी अर्धभाग रूप में पृथ्वी की गोलाई मिलती है, तो संभवतः ऊपर से नीचे भी नारंगी के समान गोल होगी। मेरे ध्यान से ऊपर से नीचे तक गोलाई का किसी भी व्यक्ति ने आज तक किसी भी रूप में चक्कर नहीं लगाया है। शायद आप को कुछ पता हो, तो अवश्य ही प्रगट करने का कष्ट उठावें। इसलिए ऐसी महत्वपूर्ण बात को केवल कल्पना के आधार पर नहीं माना जा सकता। अस्तु।

हां, तो उक्त कथन से यह सिद्ध हुआ, कि वर्तमान के भरतक्षेत्र में ऊंचाई एवं विषमता अवश्य है, जिसका छोटा सा प्रमाण यही है, कि कलकत्ते से बम्बई में ही सूर्योदय एवं अस्त में एक घंटे का फर्क है, अर्थात् जब करीब १½ हजार मील के फासले पर ही १ घंटे का फर्क है, तो हजारों मीलों की दूरी पर स्थित देशों में यदि ४-६ घंटे का इससे अधिक का सूर्योदय में फर्क पड़ जाता कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(२) तीसरा आपका प्रश्न यह है कि "समुद्र में जब कोई जहाज, किनारे की ओर आता है, तब उसका मस्तूल पहले देख पड़ता है और उसका नीचला हिस्सा तब तक नहीं दिखलाई पड़ता, जब तक कि वह बिलकुल करीब न आ जाय इसका कारण है ?"

समाधान —

यह प्रश्न संभवतः आपने पृथ्वी को गोल सिद्ध करने के लिए दिया है, और शायद इसी को भूगोलिकज्ञ पृथ्वी को गोल सिद्ध करने के लिए सब से बड़े प्रमाण के रूप में पेश किया करते हैं। परन्तु जरा भी विचार करने पर पता चलता है, कि इस युक्ति में कोई सार नहीं है।

स्पष्टीकरण — इस युक्ति के देने वाले लोगों के अनुसार जहाज का नीचाई की ओर से ऊंचाई की ओर आना माना जाता है। तब जहाज को आता हुआ देखने वाले लोग उक्त सिद्धान्तज्ञों के अनुसार ऊंचाई पर स्थित ही मानना पड़ेंगे। ऊंचाई पर स्थित मनुष्यों को नीचे की ओर से आती हुई वस्तु सर्वांग ही प्रत्यक्ष में दिखाई पड़ती है, इस प्रत्यक्ष प्रमाण के अनुसार ऊंचाई पर स्थित लोगों को, नीचे की ओर से आते हुए जहाज को सर्वांग ही दिखाई देना चाहिए, न कि केवल मस्तूल ही। क्योंकि मनुष्य के नेत्र जिस प्रकार अपने समतल पर या ऊपर स्थित पदार्थ को देख सकते हैं, उसी प्रकार नीचाई पर स्थित पदार्थ को भी तो देख सकते हैं; फिर इस जहाज के देखने में ही कौन सी बाधा आ गई। बल्कि नीचाई पर स्थित वस्तु को तो और भी अच्छी तरह एवं देर तक देख सकते हैं, इसलिए मानना पड़ेगा, कि पृथ्वी को गोल सिद्ध करने के लिए इस युक्ति को देना सर्वथा उपहासास्पद है।

शंका —

आप यहां कह सकते हैं कि आपके इस कथनानुसार हम इस युक्ति को पृथ्वी को गोल सिद्ध करने के लिए उपयुक्त न भी मानें, फिर भी हमारा उक्त प्रश्न तो खड़ा ही होगा।

समाधान —

आपका यह कहना ठीक है, और इसके लिए विचार करने पर यह समझ में आता है, कि समुद्र के जल में से एक प्रकार की भाप या गैस हमेशा उठा करती है, और नीचे से उठने वाली भाप, गैस या धूलि आदिक का यह नियम सा हुआ करता है कि वे नीचे स्थूल, मोटी या सघन हुआ करती हैं और ऊपर की ओर ज्यों २ बढ़ती जाती हैं, त्यों त्यों, सूक्ष्म, तरल, या पतली होती जाती हैं। इस नियम के अनुसार समुद्र में से उठने वाली

भाप या गैस का स्थूलभाग तो नीचे की ओर रहता है, और उसका पतला भाग ऊपर की ओर रहता है। नीचे का स्थूल भाग, लम्बी दूरी की अपेक्षा देखने वाले पुरुष के पास से दूर पर स्थित पदार्थ का यदि सघनता की अपेक्षा जोड़ा जावे, तो और भी सघन सिद्ध होगा। बस, यही सघनता ही जहाज को देखने वाले पुरुष की आंखों के लिए प्रतिबन्धक का काम करती है। यही कारण है कि जहाज के समतल पर हो, या आपके मंतव्यानुसार नीचाई से आता हुआ मान लेने पर भी हमें जहाज का नीचा हिस्सा दिखाई नहीं देता। किन्तु ऊपरी भाप या गैस नीचे की अपेक्षा सूक्ष्म या पतली होती है, जिससे जहाज के ऊपरी देखने में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हां, जहाज के बहुत दूर होने पर उस ऊपरी भाप की सघनता जब गणित के अपेक्षाकृत माप से बहुत होती है, तब जहाज का ऊपरी हिस्सा भी नहीं दिखाई देगा। किन्तु ज्यों ज्यों जहाज पास आता जाता है, त्यों त्यों उस भाप की सघनता के कम होते जाने से वह उतना ही अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार जहाज के पास आते जाने से भाप की सघनता अपेक्षाकृत ज्यों ज्यों घटने लगती है, त्यों त्यों नीचे का भाग भी जहाज का स्पष्ट दिखाई देने लगता है। मेरे ध्यान से आपकी शंका का समाधान होगा।

इस विषय के जान कर विद्वानों से परामर्श करने पर मैं इसी ही नतीजे पर पहुंचा हूं। संभव है इसमें कुछ समझने में भी अन्यथा हो, परन्तु इतना तो निश्चित ही है, कि पृथ्वी को गोल सिद्ध करने के लिए उक्त जहाज का कथन करना बिलकुल ही निस्सार है।

आपके इन तीनों ही प्रश्नों का उत्तर देने की मेरी बहुत पहिले ही इच्छा थी, किन्तु छोटे पुत्र के निमोनिया से ग्रस्त होने के कारण इतना विलम्ब हुआ।

आशा है, आगे और भी आप इसी प्रकार के महत्वपूर्ण प्रश्न भेजेंगे, या इस विषय में जो भी शंकायें हों, उन्हें भी उपस्थित करने का कष्ट उठायेंगे। मैं भी आपके प्रश्नों का यथासाध्य उत्तर देने का प्रयास करूंगा।

आशा है कि सम्पूर्ण जैन समाज में ऐसी एक भी संस्था नहीं है, जहां पर इस प्रकार के विषयों का विद्वानों के द्वारा निर्णय हुआ करे, एवं निर्णीत तत्व समाज के सामने प्रकाश में लाए जावें। क्या सभायें एवं परिषदें भी इस ओर अपना ध्यान आकृष्ट करेंगी?